7 संकट से प्राप्त सबक और भावी चुनौतियां

7.1 अन्य वित्तीय संकटों के विपरीत हाल के संकट के बीज उन्नत अर्थव्यवस्थाओं, विशेषकर अमेरिका में बोये गये थे। यह संकट 2007 की गर्मी में वहां फूट पड़ा और इसके बाद दुनिया के अन्य भागों में फैल गया। अब यह स्पष्ट हो गया है कि संकट के लिए कई कारक जिम्मेदार थे। संकट का निकटस्थ कारण अमेरिका में आवास चक्र की विफलता और सब-प्राइम बंधकों की चूकों में वृद्धि हो सकता है, जिससे कई वित्तीय संस्थाओं को काफी हानि हुई और जिसने ऋण बाज़ारों में निवेशकों के विश्वास को झकझोर दिया, लेकिन वैश्विक स्तर पर कुछेक समष्टि-आर्थिक कारक भी परिचालित थे जिन्होंने ऐसी तेजी के बनने में मदद की।

7.2 संकटों की अन्तर-कालिक तुलना यह प्रदर्शित करती है कि हालांकि हाल की वित्तीय खलबली के प्रकट होने में कुछ नये तत्व सन्निहित थे लेकिन अधिक बुनियादी संघटक वैसे ही हैं (अध्याय 2 देखें)। संकटों की पुनरावृत्ति प्रणाली में सन्निहित मूल अनुचक्रीयता को प्रदर्शित करती है जिसकी विशेषता यह है कि अच्छे समय में जोखिम उठाया जाता है और लीवरेज के बढ़ने दिया जाता है जबकि खराब समय में जोखिम से एकाएक निकासी के साथ-साथ लीवरेज को कम किया जाता है। आनुभाविक रूप से यह पाया गया है कि संकट की हाल की घटना में आस्तियों के मूल्यों का पैटर्न अन्य बड़े वित्तीय संकटों की घटनाओं की याद दिलाता है। अमेरिकी आवासीय तेजी का समग्र आकार और इसकी गतिकी, जिसमें संकट से पूर्व के पांच वर्षों में आवास के मूल्यों में 30% से अधिक की वृद्धि और संकट के आरंभ होने से पूर्व के छह तिमाहियों में शीर्ष पर होना शामिल है, उदाहरणार्थ, फिनलैण्ड (1991), जापान (1992), नार्वे (1987), स्वीडन (1991) और स्पेन (1977) जैसी उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में कुछ पूर्व बैंकिंग संकटों के दौरान की घटनाओं में आवास मूल्यों में उल्लेखनीय समरूपता देखी गई है (रीनहार्ट और रोगोफ, 2008)। साथ ही संकट से पूर्व की अवधि में लंबे समय तक अमरीका में ऋण का विस्तार होना पूर्ववर्ती घटनाओं की तरह ही है, सिवाय इसके कि इस बार यह एक खंड अर्थात् सब-प्राइम बंधक बाज़ार तक केंद्रित था। फिर भी, इसके संप्रेषण और विस्तार के संबंध में कुछ नये आयाम थे जिन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन नये आयामों में शामिल थे (i) जटिल और अपारदर्शी वित्तीय लिखतों का व्यापक उपयोग; (ii) वित्तीय बाज़ारों के बीच राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वर्धित अंतरसंबद्धता, जिसमें अमेरिका सबसे आगे था; (iii) अत्यधिक लीवरेज वाली वित्तीय संस्थाएं; और (iv) घरेलू क्षेत्र की केंद्रीय भूमिका।

7.3 वैश्विक वित्तीय संकट के तात्कालिक कारण के रूप में अमेरिकी सब-प्राइम बंधक की विफलता ने यह प्रकट किया कि कुछ वित्तीय योजनाएं और लिखत इतने जटिल हो गये हैं कि जिन्होंने वैश्विक वित्तीय प्रणाली के लिए काफी जोखिम प्रस्तुत की, जिसके परिणामस्वरूप विश्वभर की अर्थव्यवस्था समकालिक तरीके के संकट की ओर अग्रसर हुई। हालांकि संकट के कारणों को समझने में उन कारकों के बीच के अंतर को पहचाना महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने अमेरिकी सब-प्राइम आवास ऋण बाज़ार में चूकों की वृद्धि में योगदान दिया और उन कारकों को, जिन्होंने इन हानियों को और व्यापक बनाया तथा जिनके कारण वित्तीय बाज़ारों में बड़ी अव्यवस्था हुई। सब-प्राइम आवास में बढ़ती हानियों के लिए जो कारक सीधे तौर पर जिम्मेदार थे, उन्हें इस प्रकार से पहचाना जा सकता है (i) कम ब्याज दर/अनुकूल समष्टि-आर्थिक माहौल, जिसने अधिक जटिल वित्तीय उत्पादों में निवेश कर उच्चतर प्रतिफल की खोज में ऋण देने और जोखिम उठाने के लिए प्रोत्साहित किया; (ii) विनियामक संरचनाएं, जिन्होंने प्रतिभूतिकरण के वर्धित उपयोग और 'आरंभ और वितरण' बंधक मॉडल के विस्तार को प्रोत्साहित किया; (iii) ऋण गुणवत्ता की ओर कम ध्यान; (iv) निवेशकों के बीच समुचित सावधानी की कमी; और (v) जोखिम प्रबंध प्रणालियों और विनियामक निरीक्षण में कमजोरियां। संकट में योगदान देने और उसको तीव्र करने वाले अन्य कारकों में शामिल थे (i) ओवर-दी-काउंटर (ओटीसी बाज़ार) में जटिल संरचित वित्तीय उत्पादों में अंतर्निहित पारदर्शिता की कमी; (ii) दबाव की अवधियों के दौरान उचित मूल्य लेखांकन के उपयोग में कठिनाइयां और अनुभवहीनता; (iii) वित्तीय बाज़ार के सभी सहभागियों की

जोखिम प्रबंध प्रणालियों में कमजोरियां, विशेषकर चलनिधि जोखिम के संबंध में; (iv) एक्सपोज़र और जोखिमों के बारे में अपर्याप्त प्रकटन; (v) लीवरेज का उच्च स्तर; और (vi) क्रेडिट रेटिंग पर अधिक-निर्भरता और संरचित उत्पादों की क्रेडिट रेटिंग में कमियां। उच्च लीवरेज अधिक व्यापक रूप में हानियों को बढ़ाने का उल्लेखनीय कारक रहा है, जिसके चलते कुछ वित्तीय संस्थाओं ने गिरते बाज़ारों में प्रतिभूतियां बेचीं, क्योंकि मूल्यों की पूर्व गिरावट के लिए उन्हें मार्जिन राशि देनी पड़ी। इसने मूल्यों में गिरावट की कुण्डली में योगदान दिया (जी-20 अध्ययन दल, 2008)। संक्षेप में, वित्तीय संकट में समष्टि और व्यष्टि, दोनों कारकों ने योगदान दिया।

7.4 वित्तीय संकट, जिसकी विशेषताएं उच्च प्रणालीगत जोखिम, आस्ति के गिरते मूल्य और कम होते ऋण हैं, के कारण सभी देशों में कारोबारी और उपभोक्ता विश्वास को धक्का लगा तथा वैश्विक आर्थिक कार्यकलाप में तेजी से कमी शुरू हुई। इसका प्रभाव उत्पादन, रोजगार, व्यापार और वित्तीय प्रवाहों पर प्रभाव अत्यधिक पड़ा (देखें अध्याय 3)। असल में, उन्नत और उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) के बीच बढ़ते व्यापार और वित्तीय एकीकरण से संकट के प्रभाव अधिक संक्रामक सिद्ध हुए। जीडीपी की वृद्धि दर पर प्रभाव के अलावा, वित्तीय संकट ने सुरक्षा की ओर पलायन और गृह देश के बढ़ते पूर्वाग्रह के जरिये उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में पूंजी के प्रवाह को प्रभावित किया।

7.5 संकट के संभावित संक्रमण के कारण इसके समकालिक स्वरूप ने वैश्विक वित्तीय प्रणाली में विध्वंस को न्यूनतम करने के तरीके तलाशने के लिए समन्वित प्रयासों हेतु पूरी दुनिया की सरकारों और केंद्रीय बैंकों को एक साथ ला दिया। अत: अनुक्रियाएं बहुविध थीं। कुछेक अल्पकालिक कार्यों का उद्देश्य बाज़ार चलनिधि और पूंजीकरण को बनाये रखना था क्योंकि खराब आस्तियों से हानियों के बारे में चिंताओं ने धीरे-धीरे प्रमुख वित्तीय संस्थाओं की शोधनक्षमता और निधीयन के विषय में प्रश्न खड़े किये। आईएमएफ के अनुसार (2009डी), वैश्विक घटनाओं के प्रति नीतिगत अनुक्रियाएं तेज, व्यापक और बहुधा अपरंपरागत रही हैं लेकिन ये प्राय: थोड़ा-थोड़ा करके हुईं तथा अधोगति कुण्डली को रोकने में असमर्थ रहीं। लेहमैन ब्रदर्स के असफल होने के प्रभाव के परिणामस्वरूप प्रमुख परिपक्व बाज़ारों के प्राधिकारियों ने यह विश्वास जगाने का प्रयास किया कि किसी भी संभाव्य रूप से प्रणालीगत वित्तीय संस्था को असफल नहीं होने दिया जायेगा। जैसाकि अध्याय 4 में चर्चा की गई है, अनर्जक आस्तियां होने वाले अमेरिका और यूरोप के कई ऐसे बैंकों को उल्लेखनीय प्रत्यक्ष पूंजी सहायता और गारंटियां प्रदान की गईं। अधिक व्यापक रूप में, प्राधिकारियों ने बहुपक्षीय रणनीतियां अपनाईं जिनमें निधीयन दबावों को कम करने के लिए बैंक देयताओं हेतु चलनिधि और विस्तारित गारंटियों का सतत प्रावधान, बैंक पुनर्पूंजीकरण के लिए सार्वजनिक निधियां उपलब्ध कराना और विपदग्रस्त आस्तियों के संबंध में नीतिगत उपायों की घोषणा करना शामिल हैं। हालांकि, इन नीतियों और निकास रणनीतियों के बारे में विस्तृत विवरण की कमी के कारण यह वित्तीय बाज़ारों के लिए अधिक विश्वसनीय सिद्ध नहीं हुईं। मुद्रास्फीति की चिंताएं जैसे ही कम होने लगीं और समष्टि-आर्थिक परिदृश्य और बिगड़ने लगा, दुनियाभर के केंद्रीय बैंकों ने अर्थव्यवस्था को सहायता देने और ऋण बाज़ारों की स्थितियों को सुगम बनाने के लिए कई परंपरागत और गैर-परंपरागत नीतिगत साधनों का सहारा लिया। इसी प्रकार, निर्यातों और पूंजी प्रवाहों में कमी के कारण गिरती ब्याज दरों और बढ़ते बाह्य दबावों की अनुक्रिया में उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं की नीतिगत अनुक्रियाएं काफी परिवर्तित की गई हैं। कई देश, विशेषकर एशिया और लातिनी अमेरिका, दबावों को कम करने, विनिमय दरों को नीचे की ओर समायोजित होने के लिए नीतिगत बफरों का उपयोग कर पाये हैं, लेकिन उन्होंने विशेषकर व्यापार वित्त को बनाये रखने सहित अस्तव्यस्त बाज़ार स्थितियों का मुकाबला करने और निजी ऋण को बढ़ाने के लिए आरक्षित निधियों का भी उपयोग किया।

7.6 इसके साथ त्वरित नीतिगत अनुक्रियाओं के अलावा संकट के उद्गम में योगदान देने वाले कारकों के मद्देनजर घरेलू और वैश्विक स्तर पर विनियामक और पर्यवेक्षी निरीक्षण के आत्मविश्लेषण के प्रयास भी शुरू किये गये। संकट से प्राप्त सबकों से वैश्विक वित्तीय प्रणाली में अपेक्षित परिवर्तनों का मूल्यांकन करने और राष्ट्रीय एवं वैश्विक स्तर पर विनियामक और पर्यवेक्षी ढाँचों की पुनर्संरचना के लिए अनुशंसाएं करने के लिए बहुदेशीय स्तरों पर कई उच्च स्तरीय समितियां और कार्यदल गठित किये गये। वित्तीय विनियमन और पर्यवेक्षण के संबंध में अब तक किये गये पहलकार्यों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है (देखें अध्याय 4)। तथापि, इस क्षेत्र में भावी सुधारों के लिए उभरे विचारों की चर्चा और विश्लेषण इस अध्याय में किया

गया है क्योंकि वित्तीय पर्यवेक्षण और विनियमन में सुधार प्रत्येक जटिल पहलू पर पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद उत्पन्न होने की आशा है। बढ़ते वैश्वीकरण के कारण संकट का संक्रमण भारत सहित उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में व्याप्त हो गया। भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों पर प्रभाव और प्राधिकारियों द्वारा नीतिगत अनुक्रियाओं का ब्योरा अध्याय 5 और 6 में दिया गया है। हाल के संकट की कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएं पूर्व के संकटों जैसी हैं, फिर भी यह संकट 'तुलना के परे' लगता है। इसके कारण और इसकी गतिकी, दोनों से जुड़ी कुछ अनूठी विशेषताएं हैं (पापाडेमोस, 2009)। संकट के निवारण और प्रबंधन से संबंधित कई महत्त्वपूर्ण मुद्दे उभरे हैं जो हमें बाज़ार सहभागियों और नीति-निर्माताओं, दोनों के लिए प्रासंगिक सबक सिखाते हैं। अंतर्निहित कारकों, चाहे समष्टि-आर्थिक हों या व्यष्टि-आर्थिक, जो संकट के उद्गम और तीव्र करने के लिए जिम्मेदार हैं, का विश्लेषण वित्तीय स्थिरता की सुरक्षा में लोक प्राधिकारियों जैसे केंद्रीय बैंकों, पर्यवेक्षकों/विनियामकों और सरकारों की भूमिका के बारे में मुद्दे उठाता है।

7.7 संकट ने निश्चित तौर पर मौजूदा संस्थागत ढाँचे की क्षमता और वैश्विक वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तरों पर उपलब्ध नीतिगत लिखतों पर सवाल खड़े किये हैं। इसने वित्तीय बाज़ारों और संस्थाओं की कार्यप्रणाली, विशेषकर जोखिम की कीमत, आबंटन और कुशलतापूर्वक प्रबंध करने की क्षमता के बारे में भी शंका पैदा की है। गत दो वर्षों की घटनाओं ने निजी क्षेत्र के जोखिम प्रबंधन और वित्तीय प्रणाली का सार्वजनिक क्षेत्र के निरीक्षण की अपर्याप्तताओं, दोनों की कमजोरियां प्रकट की हैं। इस प्रकार सबक न केवल बहुविध हैं बल्कि वित्तीय स्थिरता को बनाये रखने का कार्य सौंपे गये प्राधिकारियों के भिन्न-भिन्न समूह से संबंधित भी हैं। यद्यपि इनमें से अधिकांश सबक हमेशा स्पष्ट नहीं होते हैं, ये न केवल प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं पर तत्काल लागू होते हैं बल्कि उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं से मोटे तौर पर संबंधित भी हैं। हाल का वैश्विक संकट कुछ मायनों में संकट की पिछली घटनाओं के समरूप है। उदाहरणार्थ, यह वस्तुत: गत असंतुलनों का अकस्मात किया गया समायोजन है जिसने ठोस ऋण वृद्धि, इक्विटी और आवास मूल्यों में उच्चतर वृद्धि को आगे बढ़ाया। इसके अलावा, असममित सूचना जैसे परंपरागत कारक वित्तीय प्रणाली के अन्य भागों और अन्य देशों में संकट के तेजी से फैलने का एक बार फिर कारण बने। फिर भी, हाल का संकट, विशेष रूप से 2007 के मध्य से पूर्व जोखिम का अत्यधिक न्यून मूल्यनिर्धारण और गैर-ऋण पात्र परिवारों (सब-प्राइम बंधक देनदार) को अत्यधिक ऋण देने के संबंध में संकट की अन्य घटनाओं से भिन्न है। इसके अलावा, सभी गत संकट, चाहे वैश्विक हो या क्षेत्रीय, वस्तुत: परंपरागत खुदरा बैंकिंग और मुद्रा संकट के कारण आये।

7.8 1997-98 के पूर्वी एशियाई संकट में और हाल के वित्तीय संकट में कुछ समानताएं हैं तो कुछ असमानताएं भी हैं। उदाहरणार्थ, दोनों ही संकट इसलिए आये क्योंकि हाल के दशकों में अंतरराष्ट्रीय वित्तीय प्रवाह की मात्रा अत्यधिक बढ़ गई थी। इस क्रम-विकास को कई कारकों ने बल दिया, जिनमें बाज़ारों के अविनियमन, जिन्होंने वस्तुत: या विधित: कई देशों में पूंजी नियंत्रणों को हटा दिया; पूर्वी एशियाई वित्तीय बाज़ारों में पोर्टफोलियो निवेश पर उपलब्ध उच्च प्रतिलाभ; और सामान्य आर्थिक परिदृश्य में सुधार शामिल हैं। हाल की वैश्विक स्थिति की अन्य समरूपता का तथ्य यह है कि पूर्वी एशियाई संकट ने भी वित्तीय संस्थाओं के प्रबंध, पर्यवेक्षण और विनियमन में अपर्याप्तताएं प्रकट की थीं। जहां सीमापारीय पूंजी प्रवाह में अस्थिरता और विनिमय दर में उतार-चढ़ावों ने पूर्वी एशियाई संकट के कारण के रूप में उल्लेखनीय भूमिका निभाई, वहीं हाल के संकट के दौरान इन्होंने केवल आनुषंगिक भूमिका निभाई। वर्ष 2008 के अंत में उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में पूंजी प्रवाह संकट की अनुक्रिया के कारण ही अस्थिर हो गया और बुनियादी तौर पर कोई प्रेरणार्थक भूमिका नहीं निभाई। जहां तक पूर्वी एशियाई संकट और हाल के संकट के बीच अन्य अंतरों का संबंध का है, इस तथ्य के अलावा कि हाल के संकट का उद्गम अमेरिका और यूरोपीय वित्तीय प्रणाली में हुआ, न कि उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं में, हाल के संकट के संबंध में नीतिगत अनुक्रियाएं अधिक ठोस, व्यापक और प्रति-चक्रीय दिखाई देती हैं। इस बार नीति से जुड़े प्राधिकारियों ने सकल मांग को बढ़ाने और परिवारों एवं कारोबारियों को ऋण की उपलब्धता बनाये रखाने के प्रयास किये। यह 1998 में एशिया में हुई घटना से बिलकुल विपरीत था, जब राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाओं में संसाधनों को रोके रखने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु उच्च घरेलू ब्याज दर नीतियां अपनाई गई थीं, जिन्होंने प्रारंभ में देशी निवासियों से और पूंजी प्रवाह एवं बाहरी उधारों को आकर्षित किया। इसने वित्तीय संस्थाओं और निजी क्षेत्र को विदेशी मुद्रा जोखिम के बढ़ते स्तर की ओर अग्रसर किया, जिसने अंतत: पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्थाओं को बाहरी आघातों के प्रति अधिक

अरक्षित कर दिया। फिर भी, नीतिनिर्माताओं के लिए वर्तमान चुनौती सभी गत संकटों से सीख प्राप्त करने की है।

7.9 इस पृष्ठभूमि में, इस अध्याय में संकट से सबक सीखने और कुछ भावी चुनौतियों को पहचानने का प्रयास किया गया है। अध्याय के भाग I में केंद्रीय बैंकों के लिए प्रासंगिक सबकों को शामिल किया गया है जबकि भाग II में वित्तीय विनियमन और पर्यवेक्षण से जुड़े सबकों पर प्रकाश डाला गया है। भाग III में अंतरराष्ट्रीय नीतिगत समन्वय पर कतिपय सबकों को स्पष्ट किया गया है, उसके बाद भाग IV में अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की भूमिका की जानकारी दी गई है। वैश्विक असंतुलनों और समष्टि-आर्थिक प्रबंध से उभरे मुद्दों की चर्चा भाग V में की गई है, अध्याय VI में राजकोषीय नीति के लिए सबक और भाग VII में क्रेडिट रेटिंग एजेंसियों की भूमिका का उल्लेख किया गया है। संपदा और वित्तीय क्षेत्रों के बीच उचित संतुलन पर बल भाग VIII पर दिया गया है। उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं और भारत के लिए सबक का ब्योरा अध्याय IX में दिया गया है। नीतिनिर्माताओं के समक्ष प्रमुख चुनौतियां की चर्चा अध्याय X में की गई है। अंत में, भाग XI में निष्कर्षात्मक टिप्पणियां प्रस्तुत की गई हैं।

I. केंद्रीय बैंकों के लिए सबक

7.10 किसी आर्थिक और वित्तीय संकट के आने पर केंद्रीय बैंकों की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। हाल के वित्तीय संकट के दौरान केंद्रीय बैंक विलंब से संप्रेषण और अंतिम ऋणदाता के अपने मानक भूमिका के ठीक विपरीत रक्षा के लिए पहली पंक्ति में आ गये। ऐसा करने के लिए केंद्रीय बैंकों ने गैर-परंपरागत और अभूतपूर्व भूमिका के लिए अपने को पुन: तैयार किया। महामंदी के अनुभव के साथ अमेरिकी फेड रिज़र्व, जिसकी उस समय प्राय: अपस्फीतिकारी नीतियां जारी रखने और स्थिति को गंभीर बनाने के लिए आलोचना की गई थी, सहित पूरी दुनिया के केंद्रीय बैंक अर्थव्यवस्था के विनियमन में मौद्रिक नीति के महत्त्व के बारे में अधिक जागरूक हो गये हैं। इस संदर्भ में फ्रीडमैन और श्वार्टज (1963) को अमेरिकी मौद्रिक इतिहास पर अपनी पुस्तक में महामंदी के दौरान मौद्रिक कारकों की भूमिका पर विशेष बल देने के लिए श्रेय जाता है। पूर्वी एशियाई संकट भी आंशिक रूप से अपस्फीति का मुकाबला करने के लिए जापानी शून्य ब्याज दर नीति के कारण आया था जिसने कैरी ट्रेड की स्थिति तैयार में सहायता की थी। उसने एशिया में अस्थायी उछाल की स्थिति पैदा की, जिसके प्रभावों ने एशियाई अर्थव्यवस्थाओं को डूबोया। असल में, महामंदी और बाद की अन्य घटनाओं के कारणों के संबंध में की गई खोज यह संकेत करती है कि वित्तीय स्थिरता को बनाये रखने में केंद्रीय बैंकों और अन्य सरकारी एजेंसियों की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी है। केंद्रीय बैंकों की भूमिका न केवल अंतिम ऋणदाता के रूप में महत्त्वपूर्ण होती है बल्कि इस कारण से भी कि वे वित्तीय प्रणाली और आर्थिक चक्रों, दोनों को देखने के लिए बेहतर सुसज्जित माने जाते हैं। केंद्रीय बैंकों की बैंकिंग प्रणाली से समीपता उन्हें वित्तीय गतिकी की गहरी जानकारी प्रदान करती है और उनसे अर्थव्यवस्था की उत्पन्न होती गतिकी का निष्पक्ष मूल्यांकन प्रदान करने की अपेक्षा होती है। हाल के संकट में, केंद्रीय बैंकों ने तेज और नवोन्मेषी नीतिगत निर्णय, कभी-कभी अन्य केंद्रीय बैंकों का सहयोग लेकर, संकट के प्रभाव को कम करने में निर्णायक और सक्रिय भूमिका निभाई। संकट के अनुभव से पता चलता है कि वित्तीय स्थिरता को केंद्रीय बैंकों की प्राथमिकताओं में उच्चतर स्थान देने के पीछे सुदृढ़ तर्काधार है। इस प्रकार, व्यापक रूप से यह महसूस किया जाता है कि केंद्रीय बैंकों की भूमिका पर पुन: विचार करने और उसे पुनर्निर्धारित करने की जरूरत है। इस संदर्भ में नीति संबंधी चर्चाओं में निम्नलिखित मुद्दों पर ध्यान आकर्षित किया गया है।

आस्ति मूल्य और मौद्रिक नीति की भूमिका

7.11 हाल के वित्तीय संकट ने वित्तीय स्थिरता ढाँचों और उनके भीतर वित्तीय स्थिरता में केंद्रीय बैंकों की भूमिका की समीक्षा करने के लिए प्रेरित किया। संकट ने इस तथ्य को उजागर किया है कि वित्तीय असंतुलन और अतिरेक समष्टि-आर्थिक स्थिरता और मूल्य स्थिरता के माहौल में बन रहे थे। मौद्रिक नीति के ढाँचे में बेहतर पद्धति की विशेषता के रूप में उभरी संकट-पूर्व की सहमति, 'एकल लक्ष्य' (अर्थात् मूल्य स्थिरता) और 'एकल लिखत' (अर्थात् अल्पकालिक नीतिगत ब्याज दर) नीतिनिर्माताओं और अनुसंधानकर्ताओं के बीच पुन: चर्चा का विषय बन गया है। मूल्य स्थिरता मुद्रा नीति का महत्त्वपूर्ण, न कि एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए। संकट का महत्त्वपूर्ण सबक यह है कि मूल्य स्थिरता पर एकनिष्ठ संकेंद्रण माल एवं सेवाओं के मूल्यों के रूप में कम और स्थिर मुद्रास्फीति के माहौल का निर्माण कर सकता था, लेकिन पण्यों के उत्पादन/सेवा प्रदान करने वाले क्षेत्रों में प्रतिलाभ को कम करना वित्तीय क्षेत्र को प्रतिफल की खोज में दूसरी दिशा में

मोड़ सकता था। संकट से मूल सबक यह है कि मूल्य स्थिरता और समष्टि-आर्थिक स्थिरता के बावजूद वित्तीय स्थिरता को जोखिम हो सकता है (सुब्बाराव, 2009डी)। मूल्य और वित्तीय स्थिरता के बीच अनुपूरकता का मिथक गलत साबित हुआ। असल में, अन्तर्विरोध अब अधिक स्पष्ट हो गये हैं। इस प्रकार, इस बात की जांच करने की जरूरत है कि क्या वित्तीय स्थिरता को आर्थिक नीति के अंतर्निहित चर से सुस्पष्ट चर में के रूप में आगे आना चाहिए।

7.12 हाल के संकट ने इस विवाद को जन्म दिया है कि क्या आर्थिक नीति का उपयोग तेजी पर लगाम लगाने के लिए किया जाये? यदि हाँ, तो क्या यह मौद्रिक नीति की जिम्मेदारी के अंतर्गत आता है? संकट के प्रारंभ होने तक मोटे तौर पर यह तर्क दिया जाता था कि मूल्य स्थिरता जरूरी थी और आर्थिक विकास एवं वित्तीय स्थिरता के लिए (लगभग) पर्याप्त थी। हालांकि, माल के मूल्यों में स्थिरता लाने में सफलता के साथ प्राय: आस्ति मूल्यों में मुद्रास्फीति का प्रभाव होता था जिसके कारण अधारणीय सट्टेबाजी होती थी और इसके परिणामस्वरूप आस्तियों के मूल्यों में तेजी आती थी। संकट-पूर्व की अवधि के दौरान मुद्रास्फीति वित्तीय आस्ति मूल्यों से पेट्रोलियम तक और उसके बाद अन्य पण्यों एवं खाद्य पदार्थों में फैल गई, क्योंकि धीरे-धीरे इन्हें वित्तीय निवेश और सट्टेबाजी के अधीन की वित्तीय आस्ति श्रेणियां माना जाने लगा था। ऐसा भी नहीं है कि मौद्रिक और ऋण का मुद्दा आस्ति मूल्य में वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण है, पूर्णत: नया है। महामंदी के बाद, फिशर (1932) ने विभिन्न तेजियों और मंदियों के कारणों की खोज की। अन्य बातों के साथ उन्होंने इस तथ्य की ओर इशारा करते हुए मौद्रिक कारकों की भूमिका पर बल दिया कि सभी मामलों में वास्तविक ब्याज दरें काफी कम रही थीं और इस प्रकार मौद्रिक कारक अत्यधिक तेजी को बढ़ा रहे थे। आस्ति के मूल्य में तेजी और गिरावट पर केंद्रित अन्य अध्ययनों में मौद्रिक नीति में काफी, यद्यपि गैर-इरादतन, गलतियां स्पष्ट रूप से पाई गईं (बोरडो और जीन्न, 2002; बोरियो आदि 1994; गेरडेसमीयर आदि 2009; इस्सिंग, 2002)। अत: संकट से पुन: उभरा सबक यह है कि मौद्रिक नीति के निर्णय मुद्रास्फीति के स्रोत के प्रति संवेदनशील होने चाहिए। अब धीरे-धीरे यह महसूस किया जा रहा है कि केंद्रीय बैंकों को अपनी नीति के प्रभाव का मूल्यांकन केवल मूल्य स्थिरता की बजाय समष्टि-आर्थिक स्थिरता के व्यापक कैनवास पर करने की जरूरत है। असल में, अंतर्निहित समष्टि-आर्थिक और वित्तीय स्थितियों के अनुसार प्रत्येक को लचीलेपन से दिये गये भारांकों के अनुक्रम के साथ सभी प्रकार की स्थिरता अर्थात् मूल्य स्थिरता, उत्पादन स्थिरता और वित्तीय स्थिरता केंद्रीय बैंक के लक्ष्यों के मूल में है। अत: राष्ट्रीय और वैश्विक समष्टि-आर्थिक स्थिरता की संकल्पना को भी व्यापक करने की जरूरत है।

7.13 यद्यपि आस्ति के मूल्यों में अत्यधिक तेजी को प्रेरित करने में मौद्रिक नीति की भूमिका के संबंध में विरोधाभाषी तर्क दिये जाते हैं, लेकिन इस बात पर धीरे-धीरे बल दिया जा रहा है कि मौद्रिक नीति और आस्ति मूल्यों के बीच के संबंध पर पुन: विचार करने की जरूरत है। पहली विचारधारा का मत है कि आस्ति मूल्य प्राय: तेजी से बढ़ते और तेजी से गिरते रहते हैं। इन पर सुदृढ़ अनुचक्रीय प्रभाव हो सकता है जो वित्तीय बाज़ारों की स्थिरता को भी प्रभावित कर सकता है। चूंकि केंद्रीय बैंकों को प्राय: वित्तीय स्थिरता के लिए जिम्मेदार माना जाता है, अत: उन्हें आस्ति मूल्यों पर निगरानी रखनी चाहिए और मूल्यों में भारी तेजी (जिसमें अनिवार्यत: कमी आएगी) को रोकने का प्रयास करना चाहिए। इस दृष्टिकोण में अत्यधिक तेजी को रोकने में ब्याज दर के प्रयोग को कारगर साधन के रूप में देखा जाता है। उदाहरणार्थ, पापाडेमोस (2009), मेल्टजर (2009) और ऑरफानिडेस (2010) ने इस बात पर बल दिया कि हाल के संकट के सबकों में से एक यह है कि आस्ति बाज़ार के अतिरेकों को रोकने और उनमें शामिल प्रणालीगत और अपस्फीतिकारी जोखिमों से बचने के लिए मौद्रिक नीति के साधनों को भी अपनाया जाना चाहिए।

7.14 दूसरी विचारधारा के संबंध में आस्ति मूल्य वृद्धि के बारे में प्रसिद्ध ग्रीनस्पेन प्रामाणिकता का प्रभुत्व रहा है। बर्नान्के और गिर्टलर (2011) ने तर्क दिया कि केंद्रीय बैंकों को अपने नीति निर्माण में आस्ति मूल्यों की उपेक्षा करनी चाहिए। उन्होंने केंद्रीय बैंक की नीति में आस्ति मूल्यों के स्तर पर स्वतंत्र अनुक्रिया प्रदान करने का अतिरिक्त लाभ, यदि कोई हो, नगण्य पाया। इस प्रस्ताव के समर्थन में पहला तर्क यह है कि प्रत्याशित बुलबुले को पहचानना मुश्किल है। यह तर्क दिया जाता है कि आस्तियों के मूल्यों को प्रभावित करने के लिए बाज़ारों की तुलना में केंद्रीय बैंकों को पास बेहतर जानकारी नहीं भी हो सकती है। दूसरा तर्क यह है कि यदि प्रत्याशित बुलबुलों की पहचान कर भी ली जाये तो भी ऐसी स्थिति को ठीक करने में ब्याज दर का उपयोग अप्रभावी है। केंद्रीय बैंक बुलबुले के फटने पर केवल नुकसान को सीमित कर सकता है (ग्राउवे आदि 2008)। बर्नान्के

(2010) ने विनियामक प्रणाली को सुदृढ़ करने के प्रयासों को अधिक प्राथमिकता प्रदान की। मिश्किन (2008) और टेलर (2010) ने भी आस्ति मूल्य के बुलबुले के फटने में मौद्रिक नीति की कोई भूमिका नहीं देखी। मौद्रिक नीति की भूमिका के विरुद्ध तर्क देते हुए मिश्किन (2008) ने राय व्यक्त की कि अधिकांश मामलों में मौद्रिक नीति को आस्ति मूल्यों के प्रति स्वभावत: अनुक्रिया नहीं देनी चाहिए बल्कि आस्ति मूल्य के घट-बढ़ के परिणामस्वरूप मुद्रास्फीति के परिदृश्य और सकल मांग में परिवर्तन करना चाहिए। चूंकि निश्चय के साथ आस्ति मूल्य के बुलबुले को पहचानना मुश्किल है अत: गलत पहचाने गये बुलबुले के प्रति कोई भी मौद्रिक नीतिगत अनुक्रिया विकास प्रक्रिया में बाधा डाल सकती है। इसी प्रकार, आस्ति मूल्यों में तेजी को रोकने के लिए मौद्रिक नीतिगत प्रक्रिया संसाधनों के आबंटन के संबंध में तब आस्ति मूल्यों की भूमिका के साथ हस्तक्षेप कर सकती है जब विशेषकर बुलबुले की उपस्थिति, स्वरूप और मात्रा के संबंध में अनिश्चितता हो। संक्षेप में, यह विचारधारा मानती है कि मौद्रिक नीति मुद्दे के समाधान की बजाय अधिक नुकसान पहुंचा सकती है। इस तर्क के संबंध में कि अधिकांश केंद्रीय बैंक एक साधन (केंद्रीय बैंक द्वारा नियंत्रित अल्पकालिक ब्याज दर) के प्रयोग से दो लक्ष्यों (कम मुद्रास्फीति और पूर्ण रोजगार) को प्राप्त करने के लिए पहले से ही व्यस्त हैं, कालोमिरिस (2009) ने तर्क दिया कि आस्ति बुलबुलों की पहचान करके उन्हें समाप्त करने को मौद्रिक नीति के तीसरे लक्ष्य के रूप में जोड़ना अवांछनीय होगा क्योंकि यह मौद्रिक नीति के प्रमुख लक्ष्यों को पूरा करने के लिए ब्याज दरों के प्रयोग की केंद्रीय बैंकों की क्षमता को कम आंकेगा। इसकी बजाय उन्होंने अनुशंसा की कि आस्ति बाज़ार बुलबुले के समाधान के लिए विवेकपूर्ण विनियमन आदर्शत: उपयुक्त है, क्योंकि ऐतिहासिक रूप से आसान ऋण आपूर्ति का आस्ति बुलबुले के साथ बहुत ही नजदीकी संबंध है। मोहन (2009ए) ने सुझाव दिया कि निक्रिय मौद्रिक नीति अनुक्रिया की बजाय पूर्वोपायी और अंशांकित मौद्रिक एवं विनियामक उपाय बेहतर होंगे।

7.15 मौद्रिक नीति की भूमिका के संबंध में अपने गुणों एवं अवगुणों के साथ इन विरोधी तर्कों के बावजूद यह महसूस किया जाता है कि आस्ति मूल्य के बढ़ने को उपेक्षा करने की नीति असफल हो गई है और मूल्य स्थिरता अनिवार्यत: वित्तीय स्थिरता प्रदान नहीं करती। हाल का संकट मौद्रिक नीति के विश्लेषण के लिए संकट-पूर्व के मतैक्य को स्पष्ट रूप से झुठलाता है जो ऐसे प्रतिमानों पर बना है जिसमें वित्तीय स्थितियां, जैसे कि आस्ति मूल्यों में वृद्धि, मुद्रा और ऋण की मात्रा, समष्टि-आर्थिक परिणाम तथा मौद्रिक नीतिगत संप्रेषण बहुत ही सीमित भूमिका निभाते हैं। उस ढाँचे के अंतर्गत वे अंतर्निहित आर्थिक स्थितियों को प्रतिबिम्बित कर या अनुमान लगा सकते हैं लेकिन वे इन स्थितियों के बारे में कोई प्रतिसूचना नहीं देते। संकट-पूर्व मतैक्य का दृष्टिकोण इस धारणा पर भी आधारित था कि ठोस आस्ति मूल्य गतिकी और गैर-सुयोजन का सुदृढ़ मुद्रास्फीतिकारी दबावों के साथ संबंध होता है। इस प्रकार, कोई भी केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति में बढ़ोतरी को रोकने के लिए कार्रवाई करता है तो ऐसे वित्तीय असंतुलन स्वत: ही दूर होंगे। हालांकि 2000 में डॉटकॉम तेजी एवं तेज गिरावट और हाल का वैश्विक संकट दुनिया के अधिकांश भागों में अपेक्षाकृत कम और स्थिर मुद्रास्फीति से मेल खाते हैं जो मौद्रिक नीति-निर्माण में वित्तीय स्थितियों के लिए अधिक स्पष्ट भूमिका की ओर इशारा करती हैं। अत: धीरे-धीरे यह महसूस किया जा रहा है कि मौद्रिक नीति के अधिदेश में न केवल मूल्य स्थिरता, बल्कि समष्टि-वित्तीय स्थिरता को भी शामिल किया जाना चाहिए। केंद्रीय बैंकों को आस्ति मूल्य घट-बढ़, ऋणों में तेजी, लीवरेज और प्रणालीगत जोखिम बनने के बारे में अपने निर्णयों को ध्यान में रखते हुए व्यापक समष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। असल में, मौद्रिक नीति के रुझान को, जिसका निर्धारण आम तौर पर दूरदर्शी ढंग निर्धारित किया जाता है, समष्टि-विवेकपूर्ण नीतियों के रुझान के प्रमुख संकेतक के रूप में कार्य करना चाहिए। मौद्रिक नीति के प्रति इस व्यापक दृष्टिकोण की यह अपेक्षा होगी कि समष्टि-वित्तीय स्थिरता की चिंता को केंद्रीय बैंकों के अधिदेश में स्पष्ट रूप से शामिल किया जाये। तथापि, प्रत्याशाएं यथार्थ के नजदीक होनी चाहिए, हालांकि बेहतरीन अग्रणी संकेतक भी अपूर्ण पाये जाते हैं।

7.16 संकट के प्रति केंद्रीय बैंकरों की समुचित अनुक्रिया के संबंध में आईएमएफ ने यह रेखांकित किया है कि केंद्रीय बैंकों को निम्नलिखित का मूल्यांकन करना है (i) उभरती वित्तीय अरक्षितता के संकेतों की प्रतिक्रिया से संभाव्य लाभ, (ii) क्या अन्य नीतियों का उपयोग किया जा सकता है, और (iii) उत्पादन को स्थिर रखने के लिए उस पर और मुद्रास्फीति पर संकेंद्रण के बीच समायोजन तथा आस्ति मूल्य में अत्यधिक तेजी और गिरावट के जोखिम को कम करने का प्रयास करना। अन्य शब्दों में, बढ़ते समष्टि-वित्तीय जोखिमों के संकेतों का मूल्यांकन करने और उचित नीतिगत अनुक्रिया का सुझाव देने के लिए मौद्रिक प्राधिकारियों की निश्चित रूप से बड़ी भूमिका है। केंद्रीय बैंकों को आस्ति मूल्यों में अत्यधिक वृद्धि की

वहनीयता के बारे में अपनी चिंता संप्रेषित करनी चाहिए और प्रणालीगत जोखिमों के अधिक उद्देश्यपरक मूल्यांकन में योगदान देना चाहिए। इस संदर्भ में, अन्य बातों के साथ-साथ वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए केंद्रीय बैंकों की अधिक भूमिका से संबंधित जी-30 की रिपोर्ट 'वित्तीय सुधार : वित्तीय स्थिरता के लिए ढाँचा' की अनुशंसाएं भी विचारणीय हैं। वित्तीय विनियमन के संबंध में स्क्वाम लेक कार्यदल की हाल (जून 2010) की रिपोर्ट भी इस बात पर बल देती है कि केंद्रीय बैंकों को समग्र वित्तीय स्थिरता के पर्यवेक्षक होने चाहिए।

7.17 संक्षेप में हाल घटनाएं प्रदर्शित करती हैं कि संकट वित्तीय प्रणाली के किसी भी खंड में उत्पन्न सकता है। इसके मद्देनजर मौद्रिक और विनियामक प्राधिकारियों के लिए आत्मसंतोष की कोई गुंजाइश नहीं है। सबक यह है कि मौद्रिक नीति की भूमिका केवल मुद्रास्फीति से लड़ने से कहीं अधिक है। मुद्रास्फीति पर अत्यधिक ध्यान दिये जाने के चलते कुछ केंद्रीय बैंकों ने इस बात की उपेक्षा की कि उनके वित्तीय बाज़ारों में क्या हो रहा है। अत: केंद्रीय बैंकों को आस्ति मूल्यों में तेजी के स्वरूप पर सतत् निगरानी रखने की जरूरत है और वे निर्णय लें कि क्या सट्टेबाजी के स्वरूप की तेजी से जुड़े जोखिम को न्यूनतम करने में मौद्रिक नीति कोई भूमिका अदा कर सकती है। यदि मुद्रास्फीति अनियंत्रित रहती हैं तो उन्हें कम से कम मुद्रास्फीति और आस्ति मूल्यों से संबद्ध सकल लागत का मूल्यांकन करने की जरूरत है। इसके लिए केंद्रीय बैंकों को प्रणालीगत जोखिमों के नये उपाय विकसित करने होंगे ताकि असली और सट्टेबाजी वाली तेजी के बीच अंतर को स्पष्ट किया जा सके। हालांकि मौद्रिक नीति के अधिदेश में आस्ति मूल्यों में स्पष्ट समावेश का मुद्दा अभी भी विवादास्पद है, केंद्रीय बैंकों को किसी भी मामले में अपनी मौद्रिक नीति के अंतर्निहित विश्लेषणात्मक ढाँचे को सुधारने की जरूरत है। यह आवश्यक है कि मौद्रिक नीति की रणनीति ऐसे विश्लेषण के लिए ढाँचा प्रदान करे ताकि आस्ति मूल्य में घट-बढ़, मौद्रिक एवं ऋण संबंधी घटनाएं, वित्तीय असंतुलन होने और संभावित प्रणालीगत जोखिम के आविर्भाव पर गहनता से नजर रखी जाती है।

अंतिम ऋणदाता के रूप में चलनिधि का पर्याप्त प्रावधान

7.18 मौद्रिक नीति के संचालन के अलावा अधिकांश देशों के केंद्रीय बैंकों की अनिवार्य जिम्मेदारी अंतिम ऋणदाता (एलओएलआर) की भूमिका निभानी है। अपने प्रमुख कार्य के रूप में एलओएलआर का कार्य या तो बाज़ारों या अलग-अलग वित्तीय संस्थाओं को चलनिधि सहायता के प्रावधान के जरिये वित्तीय अस्थिरता को रोकना और कम करना है। हालांकि हाल के संकट ने अंतिम ऋणदाता के रूप में केंद्रीय बैंकों की क्षमता के मुद्दे को सामने ला दिया है और यह प्रश्न खड़ा कर दिया है कि क्या उनके पास उपलब्ध साधन संकट द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए पर्याप्त हैं (बर्नान्के, 2009सी; सेछेट्टी और दिसयातात, 2009)। लेहमैन ब्रदर्स की असफलता ने वास्तव में यह प्रदर्शित किया कि संकट को रोकने के लिए फेडरल रिज़र्व के चलनिधि प्रावधान पर्याप्त नहीं होंगे और पर्याप्त राजकोषीय सहायता आवश्यक थी। असल में हाल के वर्षों में वित्तीय नवोन्मेष ने चलनिधि प्रबंध के लिए बाज़ारों पर निर्भरता को काफी बढ़ा दिया। वित्तीय नवोन्मेष ने चलनिधि की परिभाषा को भी व्यापक कर दिया है और चलनिधि संकट एवं शोधनक्षमता संकट के बीच अंतर को अधिक मुश्किल कर दिया है। इस प्रकार, अनुभव से पता चलता है कि चलनिधि संकल्पना को किसी संस्था की अपनी आस्तियों की संपार्श्विकता पर निधियां जुटाने ('निधीयन चलनिधिट) की क्षमता तक ही सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि अब पूर्वानुमेय मूल्यों पर गहरे बाज़ारों में आस्तियों का तेजी निपटान करने ('बाज़ार चलनिधि') की अपनी क्षमता भी शामिल होती है। हाल के संकट ने स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया कि अंतर-बैंक बाज़ार के जरिये आपातकालीन चलनिधि सहायता को निर्दिष्ट करना तब तक कार्य नहीं करेगा जब तक अंतर-बैंक बाज़ार ठीक से कार्य न करें। जैसे ही संकट फैला, केंद्रीय बैंकों द्वारा अंतिम ऋणदाता की आमूलचूक परिवर्तित संकल्पना प्रयुक्त की जानी थी। केंद्रीय बैंकों ने बैंकों और वित्तीय संस्थाओं द्वारा सामना की जा रही सभी प्रकार की चलनिधि कमियों के लिए असाधारण मौद्रिक सहायता प्रदान की। केंद्रीय बैंकों ने परिपक्वता बढ़ा कर, संपार्श्विकता की श्रृंखला व्यापक कर, प्रतिपक्षियों की संख्या बढ़ाकर और अदला-बदली ऋण व्यवस्थाएं शुरू कर अपने परिचालनों के दायरे को व्यापक बनाया। इसके अलावा, कई प्रकार की निजी क्षेत्र की प्रतिभूतियों की गारंटी और सीधी खरीद का प्रयोग किया गया।

7.19 हाल के संकट ने इस बात को पर्याप्त रूप से स्पष्ट कर दिया है कि चलनिधि की उपलब्धता बाज़ार चलनिधि से बढ़ाने की पारस्परिक-क्रिया केंद्रीय बैंकों के लिए कठिन चुनौती खड़ी कर सकती है। इस प्रकार, केंद्रीय बैंकों को ऐसी कमी बाज़ारों में, न कि केवल बैंकों में परिकल्पित करनी चाहिए, जो बाज़ार दरों का बहियों में लेखांकन करती हैं और बाज़ार मूल्यों में परिवर्तनों के द्वारा बैंकों की चलनिधि और शोधनक्षमता के लिए चुनौती खड़ी करती हैं। इस संबंध में वर्ष

2007 और 2008 की घटनाओं के आधार पर आईएमएफ (2009ए) ने प्रकट किया कि लेहमैन के बाद वाली अवधि में बैंकों की चूक जोखिमों को कम करने में परंपरागत साधनों की तुलना में पूंजी निवेश और आस्ति खरीद जैसे गैर-परंपरागत साधन अधिक कारगर रहे। इस संबंध में इस बात को रेखांकित करना उचित है कि भारतीय रिज़र्व बैंक ने गैर-परंपरागत नीतिगत विकल्पों की जरूरत को बहुत पहले ही अर्थात् अक्तूबर 2007 में महसूस कर लिया था। रिज़र्व बैंक ने वर्ष 2007-08 की वार्षिक नीति की मध्यावधि समीक्षा में बताया था कि वह वित्तीय बाज़ारों की घटनाओं की अनुक्रियाओं में गैर-परंपरागत नीति का सहारा लेने के लिए तैयार है।

7.20 सेछेट्टी और दिसयातात (2009) ने तर्क दिया कि केंद्रीय बैंकों को निम्नलिखित बातों को शामिल करने के लिए स्वयं के परिचालनात्मक ढांचे की जरूरत है (i) लचीलापन, (ii) दूर-व्यापी प्रतिपक्षी, (iii) पात्र संपार्श्विकता की व्यापक श्रंखला, (iv) अभीष्ट कार्यों का स्पष्ट संप्रेषण, (v) राजकोषीय प्राधिकारियों के साथ गहन समन्वय, और (vi) अन्य केंद्रीय बैंकों के साथ गहन समन्वय। संकट ने भविष्य में अधिक कारगर संकट निवारण में मदद के लिए केंद्रीय बेंक के चलनिधि ढाँचों को पुनर्निर्धारित करने के लिए उपयोगी दिशानिर्देश प्रदान किये हैं। केंद्रीय बैंकों के लिए अपने चलनिधि प्रबंध ढाँचे में अधिक परिष्करण एवं संवर्धन न केवल संकट प्रबंधन के लिए बल्कि दैनंदिन परिचालन के उद्देश्यों एवं मौद्रिक संप्रेषण के लिए करना महत्त्वपूर्ण होगा। इस संदर्भ में, अधिदेशित आरक्षित निधि अपेक्षाएं चलनिधि बफर सुनिश्चित कर सकती हैं जिनका संकट में प्रयोग तथा साथ ही भुगतान प्रणाली चलनिधि से सामंजस्य बैठाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। चलनिधि प्रबंध तथा भुगतान प्रणाली की कार्यप्रणाली के लिए विचारणीय महत्त्वपूर्ण विषय सर्वोच्च गुणवत्ता वाले संपार्श्विक के रूप में चलनिधि अनुपातों का निर्धारण करना है जैसाकि भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा सांविधिक चलनिधि अनुपात के लिए किया जाता है। धीरे-धीरे यह तर्क दिया जाने लगा है कि अंतिम ऋणदाता के बागेहोट दृष्टिकोण में संशोधन की जरूरत है। जैसे-जैसे वित्तीय प्रणाली अधिक जटिल हो गई है वैसे-वैसे केंद्रीय बैंकों की भूमिका के सभी पहलू भी जटिल हो गये हैं। अंतिम ऋणदाता के सिद्धांत को चलनिधि की कमियों के ऐसे स्वरूप की पहचान कर पुनर्निर्धारित करने की जरूरत है जो आधुनिक वित्तीय प्रणाली में हो सकता है। इसमें (i) केंद्रीय बैंक की चलनिधि में कमी, (ii) विशिष्ट संस्था की निधीयन चलनिधि में अत्यधिक कमी, या (iii) निधीयन और बाज़ार चलनिधि में प्रणालीगत कमी, शामिल हो सकते हैं। केंद्रीय बैंक के अंतिम ऋणदाता सहायता के समुचित सिद्धांतों को चलनिधि की कमी के ऐसे विशिष्ट प्रकार से अनुकूलित किया जाना चाहिए, जो हो सकता है। गैर-अर्थसुलभ लेकिन शोधनक्षम बैंकों को दंडस्वरूप ब्याज पर चलनिधि प्रदान करने का बागेहोट का कथन केवल चलनिधि की कमी की सुसाध्य स्थिति में लागू होता है। अन्यथा प्रणालीगत घटना निश्चित रूप से, संदिग्ध गुणवत्ता की संपार्श्विक प्रतिभूति लेने पर बाज़ार दर की तुलना में प्रभावी रूप से अनुदानित दर पर ऋण देने की अपेक्षा करेगी। इस प्रकार, केंद्रीय बैंकों को अधिक लचीला दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है और चलनिधि प्रदान करने एवं प्रणालीगत आघातों के प्रति अनुक्रिया देने की अपनी क्षमता को सुदृढ़ करना है। यह केंद्रीय बैंकों को प्रणालीगत स्वरूप की चलनिधि की अत्यधिक कमी के चरण में अल्पकालिक मुद्रा बाज़ारों में विश्वास बहाल करने में सहायता करेगा।

बाज़ार से संप्रेषण

7.21 हाल की वैश्विक घटनाओं ने बाज़ार के साथ केंद्रीय बैंक के संप्रेषण से संबंधित एक और मुद्दे पर प्रकाश डाला गया है, यद्यपि उस पर कम बल दिया गया है। हालांकि केंद्रीय बैंकों ने वित्तीय संकट के आर्थिक प्रभाव को न्यूनतम करने का प्रयास किया है लेकिन इस संबंध में उनके द्वारा बहुत अधिक अथवा बहुत कम उपाय करने के लिए उनकी आलोचना की गयी है। जैसाकि ऊपर वर्णन किया गया है, विभिन्न नीतिगत अनुक्रियाओं, विशेषकर उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में, की व्यापकता की कमी के कारण ऋण और वित्तीय बाज़ार नीतिगत उपायों के बारे में अनिश्चय की स्थिति में रहे और उन्होंने कुछ समय तक सकारात्मक रुख नहीं अपनाया। यह बात केंद्रीय बैंकों सहित नीति निर्धारक प्राधिकारियों द्वारा बाज़ारों के साथ संप्रेषण के महत्त्व को रेखांकित करती है।

7.22 हाल के संकट के दौरान उन्नत, साथ ही उभरती बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं के केंद्रीय बैंकों ने विश्वास जगाने और बाज़ारों को स्थिर करने के लिए कई गैर-परंपरागत नीतिगत उपायों का सहारा लिया। परंतु गैर-परंपरागत मौद्रिक नीति और असाधारण उपायों के बारे में अनिश्चितता मौद्रिक नीति की सीमाओं को बढ़ा सकती है। इस प्रकार, इन पहलुओं से जुड़ी समास्याओं का समाधान केंद्रीय बैंक द्वारा बाज़ारों के साथ बेहतर संप्रेषण करके किया जा सकता है (मोहंती, 2009)। केंद्रीय बैंक समुचित संप्रेषण नीति तैयार करने में कई प्रकार

के असमंजस का सामना करते हैं। मुद्दों का एक समूह है जिसका संबंध इस बात से है कि क्या संप्रेषित किया जाना चाहिए और प्रसार का स्तर क्या हो। मुद्दों का दूसरा समूह आंतरिक सोच एवं बहस के क्रम-विकास के चरण से संबंधित है कि जानकारी कब प्रसारित की जानी चाहिए। तीसरा समूह बाज़ार पर प्रभाव के संदर्भ में संप्रेषण के समय से संबंधित है। चौथा सूचना की गुणवत्ता और संभावित तरीकों से संबंधित है जिनमें यह अनुभव किया गया है। इस प्रकार, नीतियों को स्पष्ट करने में केंद्रीय बैंकरों की ओर से कई बार तथाकथित असंबद्धता या अस्पष्टता का तत्व मुद्दों की जटिलता का उतना ही प्रतिबिम्ब है जितना कई प्रकार के श्रोताओं के भिन्न-भिन्न अनुभव का हैं जिनको संप्रेषण संबोधित किया जाता है (रेड्डी, 2006)।

7.23 इस संदर्भ में शिरकावा (2009) विस्तार से बताते हैं कि "उठाये गये कदमों के सकरात्मक और प्रतिकूल प्रभावों, दोनों का सतत मूल्यांकन करते हुए इनका सुविचारित स्पष्टीकरण करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। संकट के दौरान यदि केंद्रीय बैंक समय-असंगत नीतिगत उपाय करते हैं तो इसका केंद्रीय बैंकों पर विश्वास के प्रति नकारात्मक प्रभाव होगा और इसके परिणामस्वरूप मौद्रिक नीति की प्रभावशीलता में कमी आएगी। आखिरकार केंद्रीय बैंक को अर्थव्यवस्था के समाने उपस्थित समस्या की विशेषताओं की अनुक्रिया में अपने उद्देश्यों और रणनीतियों को संप्रेषित करने की जरूरत होती है तथा ऐसे नीतिगत उपाय करने की भी जरूरत होती है जो संप्रेषण के अनुरूप हो।" केंद्रीय बैंकों की संप्रेषण नीति को महत्त्वपूर्ण साधन उद्धृत करते हुए बर्नान्के (2009ए) तर्क देते हैं कि "भले ही एक दिवसीय दर शून्य के करीब हो, समिति को मौद्रिक नीति की भावी दिशा के बारे में लोगों की प्रत्याशाएं सूचित कर दीर्घकालिक ब्याज दरों को प्रभावित करने में समर्थ होना चाहिए. . . . . बाज़ार अनिश्चितता को न्यूनतम करने और अपनी नीतियों का अधिकतम प्रभाव हासिल करने के लिए फेडरल रिज़र्व अपने तुलनपत्र के उपयोग, अपने तुलनपत्र के भावी उपयोग की योजनाओं और उन मानदंडों जिनके आधार निर्णय लिये गये के बारे में यथासंभव जानकारी लोगों को देने के लिए प्रतिबद्ध है।" नॉर्दर्न रॉक की विफलता के दौरान संप्रेषण की कमी की ओर इशारा करते हुए वुड (2009) तर्क देते हैं कि "वित्तीय स्थिरता बनाये रखने के लिए जिम्मेदार प्राधिकारियों के पास स्थिरता के लिए चुनौती की स्थिति से निपटने की स्पष्ट कार्य-योजना होनी चाहिए। उन्हें पहले ही स्पष्ट कर देना चाहिए कि उनकी योजना क्या है, उसे कब लागू करने की जरूरत है, यह घोषणा की जानी चाहिए कि योजना प्रयुक्त की जा रही है और संकट के समाधान के प्रत्येक चरण को समय बीतने के साथ-साथ वर्णित किया जाये. . . . संकट के दौरान अप्रत्याशित चीजें लगभग निश्चित रूप से होंगी। जब ऐसी घटना होती है तब अनुक्रिया के लिए समग्र जिम्मेदारी के लिए कोई होना चाहिए जो यह समन्वय कर सके कि अनियोजित घटनाओं के लिए क्या किया जाये। इस व्यक्ति के पास इस अनुक्रिया को स्पष्ट करने के लिए स्पष्ट संप्रेषण रणनीति होनी चाहिए। आदर्शत: इस व्यक्ति को स्थिति की व्याख्या करनी चाहिए।" प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि बैंक ऑफ इंग्लैण्ड की तुलना में यूरोपीय केंद्रीय बैंक और फेडरल रिज़र्व के मौद्रिक नीतिगत उपायों का अधिक पूर्वानुमान किया जा सकता है(हरमान और फ्रैन्शर, 2007)।

7.24 न केवल केंद्रीय बैंक के नीतिगत उपायों को स्पष्ट रूप से संप्रेषित करनी की जरूरत है बल्कि केंद्रीय बैंकों द्वारा आर्थिक परिदृश्य के बारे में जानकारी का प्रसार भी महत्त्वपूर्ण है। प्राय: यह तर्क दिया जाता है कि केंद्रीय बैंकों के पास आर्थिक परिदृश्य के बारे में बेहतर जानकारी होती है और ये बाज़ार के खिलाड़ियों पर अधिक विश्वास करते हैं जैसाकि फेडरल रिज़र्व की संप्रेषण नीति के मामले से स्पष्ट है। हालांकि, यह भी तर्क दिया जाता है कि अमेरिकी मौद्रिक प्राधिकारियों द्वारा पहले से दिये गये निर्देशन ने जोखिम को काफी कम करके आंकने में योगदान दिया जो वैश्विक वित्तीय संकट के फैलने में एक महत्त्वपूर्ण घटक था। इस प्रकार, केंद्रीय बैंक किस हद तक अग्रिम निर्देशन दें, यह एक सक्रिय विवाद का विषय है। फिर भी संकट के दौरान केंद्रीय बैंकों के लिए यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो जाता है कि बाज़ार के साथ उनका संप्रेषण निश्चितता और अभिधेयता के लिए बिलकुल पर्याप्त है। इस बात पर भी बल दिया जाता है कि गैर-परंपरागत नीतियों को समाप्त करने जैसे निकास संबंधी कुछेक रणनीतियों के लिए स्पष्ट संप्रेषण बाज़ारों के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। इसके अलावा, गैर-परंपरागत नीतियों को समाप्त करने की सु-परिभाषित रणनीति, वित्तीय प्रणाली में विश्वास को प्रणालीगत जोखिमों को दूर के करने के लिए आवश्यक भावी विनियामक सुधारों में स्पष्टता के द्वारा सहारा मिलेगा। संक्षेप में, केंद्रीय बैंकों को वित्तीय बाज़ारों और वित्तीय प्रणाली में स्थिरता के लिए अपनी वचनबद्धता को स्पष्ट रूप से दोहराना है। यह उनकी मौद्रिक नीति के कार्यान्वयन और संप्रेषण प्रक्रिया को भविष्य में अधिक कारगर बना देगा।

II. वित्तीय विनियमन और पर्यवेक्षण के लिए सबक

7.25 संकट से उभरे सर्वाधिक प्रमुख सबकों में से एक यह है कि यह जरूरी नहीं है कि मुक्त बाज़ार अनिवार्य रूप से अनियंत्रित बाज़ार हो। असल में, बाज़ार अनुशासन और पर्यवेक्षण को एक-दूसरे का पूरक होना चाहिए। जब कमजोर ऋण इतिहास वाले उधारकर्ताओं को दिये गये सब-प्राइम बंधकों से सृजित जटिल वित्तीय प्रतिभूतियों को हाल के संकट के उत्प्रेरक के रूप में माना जाता है, तब वित्तीय विनियमन की समस्या की जड़ें काफी गहरी जाती हैं। प्रमुख अंतरराष्ट्रीय मंचों (अर्थात् जी-20 कार्यदल I की रिपोर्ट (2009), डी लारोसीयर रिपोर्ट (2009), टर्नर समीक्षा (2009), जिनेवा रिपोर्ट (2009) और तीस के समूह की रिपोर्ट (2009)) की सभी प्रभावशाली रिपोर्टों में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि संकट के लिए जिम्मेदार एक कारक वित्तीय प्रणाली के विनियामक और पर्यवेक्षी पहलुओं में स्थित खामियां था। इन रिपोर्टों में कई मुद्दों को उठाया गया और ऐसी संभावित दिशाओं की पहचान की गयी जिस ओर वित्तीय बाज़ारों का विनियमन आगे बढ़ सकता है। 'सुदृढ़ विनियमन को बढ़ाना और पारदर्शिता को मजबूत करना' विषय पर जी-20 कार्यदल I ने विनियामक पहलुओं की समीक्षा की और तदनुसार अंतरराष्ट्रीय विनियामक मानकों को सुदृढ़ करने, वैश्विक वित्तीय बाज़ारों में पारदर्शिता को बढ़ाने और यह सुनिश्चित करने के बारे में अनुशंसा की कि सभी वित्तीय बाज़ार, उत्पाद और सहभागी उचित प्रकार से नियंत्रित हैं।

7.26 हालांकि कतिपय क्षेत्रों में अलग-अलग मत अभी भी मौजूद हैं लेकिन कुछ प्रमुख क्षेत्रों में मतैक्य बढ़ रहा है यथा वित्तीय विनियमन और पर्यवेक्षण के दायरे और सीमाओं को पुनर्निर्धारित करना, प्रणाली में अनुचक्रीयता का प्रबंध करना, पूंजी और प्रावधानीकरण अपेक्षाओं को सुदृढ़ करना, मूल्यांकन और लेखांकन नियमों का परिष्करण करना। यह देखा जाता रहा है कि नियंत्रित हिस्से का सख्त विनियमन भी कार्यकलापों को अनियंत्रित हिस्से (अर्थात् एसआईवी और माध्यम) में अंतरित कर सकता है। ब्युटर (2009) के अनुसार "यह स्पष्ट है कि भावी प्रणालीगत असफलताओं की संभावनाओं को कम करने और निजी एवं सार्वजनिक हितों के बेहतर सुयोजन के लिए काफी अधिक विनियमन, और जो हमने विगत में देखा है उससे अलग विनियमन की जरूरत होगी"। कुछ मुद्दों की चर्चा नीचे की गई है जिनकी विनियामकों और पर्यवेक्षकों द्वारा गहन समीक्षा की जरूरत है।

प्रणाली-व्यापी दृष्टिकोण का महत्त्व

7.27 बैंकिंग प्रणाली, वित्तीय बाज़ारों और भुगतान एवं निपटान प्रणालियों के बीच अंतर-संयोजन कितना महत्त्वपूर्ण है, इसको हाल के वित्तीय संकट ने प्रदर्शित कर दिया है। ऐसा अंतर-संयोजन संपूर्ण वित्तीय प्रणाली को जोखिम के संक्रमण के लिए अधिक प्रवण बनाता है। इस प्रकार संकट के प्रारंभ होने पर प्रणालीगत जोखिम पर ध्यान देने की जरूरत धीरे-धीरे महसूस की जा रही है। यह स्पष्ट हो गया है कि विनियामकों को प्रणाली-व्यापी जोखिम को देखने की जरूरत है न कि केवल अलग-अलग संस्था-विशिष्ट जोखिम को। पर्यवेक्षकों और विनियामकों को उस अनुभव को ध्यान में रखते हुए कि एक क्षेत्र की घटनाओं का प्राय: कहीं ओर नुकसानदायक प्रभाव होता है, समूची वित्तीय प्रणाली का मूल्यांकन करने की जरूरत है। पर्यवेक्षण के बारे के में अनुलम्ब परिप्रेक्ष्य रखने के अलावा बैंकों, वित्तीय संस्थाओं, बाज़ारों और भौगोलिक क्षेत्रों के बीच समस्तर अंतर-संबद्धता को भी नीति निर्माण में मान्यता प्रदान करने की जरूरत है।

7.28 यह स्पष्ट है कि विनियमन और पर्यवेक्षण प्रणालीगत जोखिम को देखने के लिए बहुत ही फर्म-विशिष्ट थे। विशेषकर नीतिनिर्माता विनियामक दायरे के बाहर के इतनी बड़ी कि असफल होने होने नहीं दिया जा सकता वाली फर्मों में अंतर्निहित नैतिक खतरों (जिसने अत्यधिक जोखिम उठाने के लिए प्रोत्साहित किया) तथा नकारात्मक बाह्यताओं को समझने से तब चूक गये जब इतना अंतरसंबद्ध कि असफल होने नहीं दिया जा सकता की श्रेणी वाली फर्में भी असफल हो गयीं। अनुभव से पता चलता है कि संस्था के स्तर पर विनियमन और पर्यवेक्षण जरूरी है लेकिन ऐसे मामलों में पर्याप्त न भी हो। अत: यह आवश्यक है कि व्यष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का पूरक समष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण हो। हालांकि हाल के वर्षों में कई नीतिगत संस्थाओं, विशेषकर केंद्रीय बैंकों, ने प्रणालीगत जोखिमों के उनके विश्लेषण को बढ़ा दिया तथा कई प्रणालीगत अरक्षितताओं की असल में पहचान कर ली गई है जिनके कारण वर्तमान हलचल हुई या बढ़ी। इन विश्लेषणों को कारगर रूप से नीतियों में रूपांतरित करने की नीतिगत कार्यप्रणाली की कमी रही है। इस प्रकार, वित्तीय क्षेत्र के प्राधिकारियों के पास प्रणालीगत अरक्षितताओं को दूर करने के लिए उचित समष्टि-विवेकपूर्ण साधन होने चाहिए।

7.29 यह परंपरागत समझदारी कि बाज़ार अनुशासन और स्व-विनियमन हल्के ढंग से नियंत्रित और अनियंत्रित संस्थाओं को अत्यधिक

जोखिम उठाने से रोकेगा, विवादास्पद हो गई है। इस प्रकार महत्तपूर्ण सबक में इस बात की समझदारी शामिल है कि बाज़ार प्राय: उस तरीके से कार्य क्यों नहीं करते, जिसके लिए वे बने हैं। बाज़ारों के असफल होने के कई कारण हैं। इस मामले में असफल होने के लिए बहुत बड़ी वित्तीय संस्थाओं को विकृत प्रोत्साहन था। यह स्पष्ट है कि बाज़ार अनुशासन निष्प्रभावी था, यहां तक कि बैंकिंग क्षेत्र के बाहर जोखिम-उठाना नियंत्रित था। कुछ अनियंत्रित संस्थाएं उच्च स्तर के लीवरेज के साथ ऋण और चलनिधि जोखिम बड़े स्तर पर उठाने में समर्थ थीं। यह महसूस किया गया है कि गैर-बैंकिंग संस्थाएं प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे प्रमुख वित्तीय बाज़ारों की कार्यप्रणाली और उनके विश्वास को प्रभावित करने की शक्ति रखती हैं। बाज़ार और विनियामक त्रुटिपूर्ण प्रोत्साहनों की समस्याओं, सूचना अंतरालों, अनुचक्रीयता उधार और वित्तीय नवोन्मेष की तेजी से उत्पन्न हुए जोखिम संकेंद्रण को स्पष्ट रूप से पहचानने में असफल रहे। यह विनियामक और पर्यवेक्षी कार्यप्रणाली में प्रणाली-व्यापी, विशेषकर सभी उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में कमी को प्रदर्शित करती है। विनियामक और पर्यवेक्षक नियंत्रित और गैर-नियंत्रित संस्थाओं, कार्यकलापों और बाज़ारों की पारस्परिक-क्रिया से संबद्ध उभरती प्रणालीगत जोखिमों से परिचित नहीं थे (आईएमएफ 2009ए)। विनियमन के इस सीमित क्षेत्र ने जोखिम प्रबंध पद्धतियों को साथ में शामिल किये बिना वित्तीय नवोन्मेष को बढ़ाने में मदद की। विनियामकों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वित्तीय संस्थाएं कम लीवरेज वाली हों लेकिन अधिक अर्थसुलभ वाली हों।

7.30 उन्नत देशों में कई बैंकिंग संस्थाओं के आकार और जटिलता में सतत विकास ने कई प्रकार के संभाव्य जोखिमों के खतरे में डाल दिया, साथ ही एकल पर्यवेक्षक को फर्म-व्यापी जोखिमों और नियंत्रणों के पूर्ण अवलोकन हेतु अधिक चुनौतीपूर्ण बना दिया। ऐसी अपर्याप्तताएं खंडित विनियामक संरचनाओं और सूचना के आदान-प्रदान पर विधिक अवरोधों के कारण हो सकती हैं। बैंकों और गैर-बैंकों के बीच जटिल अंतर-सहलग्नता तथा संगुटों की ओर अग्रसर होने को देखते हुए यह महत्त्वपूर्ण है कि विनियामक अंतरपणन से बचने के लिए विनियामक खामियों को दूर किया जाए। इसके अलावा, यह आवश्यक है कि प्रणाली-व्यापी या समष्टि-विवेकपूर्ण निरीक्षण किया जाये जो विनियामकों और पर्यवेक्षकों के अधिदेश को व्यापक करता है ताकि उसमें संभावित प्रणालीगत जोखिमों और साथ ही कमजोरियों से संबंधित विषय शामिल किया जा सके। अमेरिका के संदर्भ में बर्नान्के (2009बी) और तारुल्लो (2009) ने सुझाव दिया कि प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण सभी फर्में, न कि केवल बैंक से संबद्ध, जैसाकि बैंक धारिता कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत प्रावधान किया गया है, समेकित पर्यवेक्षण के लिए सुदृढ़ ढाँचे के अधीन होनी चाहिए। इसी प्रकार राम मोहन (2009) ने इस बात की जांच करने पर बल दिया कि क्या सभी प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं को केंद्रीय बैंक के विनियमन के अधीन होना चाहिए।

7.31 यह बात महत्त्वपूर्ण है कि वित्तीय प्रणाली के केवल एक हिस्से पर ध्यान केंद्रित करने से अरक्षितताएं छिप जाती हैं जो अंतत: बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकती हैं। अत: पर्यवेक्षी पद्धतियों को अधिक समन्वित और बहु-विषयक बनाकर उन्हें नया स्वरूप देने की जरूरत है। हाल के संकट से यह मान्यता भी संदेह के घेरे में आ गयी है कि बड़े गैर-बैंक की तुलना में बड़े बैंक के असफल होने की लागत अधिक होगी। गैर-बैंकों के प्रणालीगत महत्त्व को अच्छी तरह से नहीं समझा गया। इस प्रकार व्यापक रूप से यह अनुभव किया गया कि वित्तीय क्षेत्र की निगरानी के दायरे को संस्थाओं और बाज़ारों की व्यापक श्रेणी को शामिल कर विस्तारित करने की जरूरत है। पर्यवेक्षण के समष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण शुरू करने पर बल देते हुए आईएमएफ (2009ए) और बर्नान्के (2009बी) ने प्रणालीगत जोखिम का ध्यान रखने के लिए अलग विनियामक स्थापित करने का सुझाव दिया, हालांकि टेलर (2010) ने ऐसे प्रस्तावों के प्रभावी होने पर संदेह व्यक्त किया। तारुल्लो (2009) भी प्रणालीगत जोखिम की समस्या के निवारण के लिए विनियामक और पर्यवेक्षी प्रणाली के बड़े पुनरुद्धार का सुझाव देते हैं। तथापि, यह महत्त्वपूर्ण है कि विनियमन का दायरा वित्तीय स्थिरता मंच और बैंकिंग पर्यवेक्षण पर बासेल समिति जैसी अंतरराष्ट्रीय निकायों के गहन समन्वय और उनके द्वारा प्रदत्त निर्देशन के अधीन राष्ट्रीय प्राधिकारियों द्वारा विस्तारित किया जाये। यह सभी अधिकारक्षेत्रों में व्यापक सुसंगतता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक है। जी-20 कार्यदल I ने अनुशंसा की कि वित्तीय नवोन्मेष और वित्तीय प्रणाली में व्यापक प्रवृत्तियों के मद्देनजर राष्ट्रीय क्षेत्राधिकारों के भीतर विनियामक ढाँचे की सीमाओं की आवधिक रूप से समीक्षा की जानी चाहिए। अंतरराष्ट्रीय निकाय इस क्षेत्र में अच्छी पद्धतियों और संगत दृष्टिकोणों को बढ़ावा देंगे। इसी प्रकार टर्नर समीक्षा (2009) ने पहचाना कि प्रणालीगत जोखिम और पूरे कोरोबारी मॉडल की वहनीयता के विश्लेषण

पर फोकस अपर्याप्त था तथा उभरते प्रणालीगत जोखिमों के समाधान के लिए विनियामक साधन तैयार करने में असफलता थी। विश्व अर्थव्यवस्था पर जिनेवा रिपोर्ट (ब्रुनेरमीयर आदि 2009) ने भी वित्तीय विनियमन के आधार के बुनियादी पुनर्मूल्यांकन का सुझाव दिया और यह प्रस्ताव किया कि समष्टि-विवेकपूर्ण लक्ष्यों को शामिल करने के लिए मौजूदा बासेल II विनियमनों को संशोधित किया जाना चाहिए।

7.32 संक्षेप में, संकट का प्रमुख सबक यह है कि अलग-अलग संस्थाओं पर संकीर्ण रूप से ध्यान केंद्रित करने वाला पर्यवेक्षण दृष्टिकोण उन बड़ी समस्याओं को छुपा सकता है जो प्रणाली में बन रही होती हैं। वित्तीय स्थिरता सुनिश्चित करने के लिए समष्टि-आर्थिक, साथ ही विनियामक और पर्यवेक्षी नीतियों को प्रणालीगत जोखिमों को न्यून करने पर ध्यान संकेंद्रित करते हुए पुन: तैयार करने की जरूरत है। विनियमनों को सभी संस्थाओं के लिए प्रोत्साहन-अनुकूल होने की जरूरत है और समय के साथ नवोन्मेष और कार्यकुशलता पर प्रतिकूल प्रभावों के लिए संभव संतुलन होना चाहिए। ऐसी संस्था के मामले में जिसकी समस्या का संबंध प्रणालीगत बाह्यताओं से हो, प्रोत्साहन उपाय विनियामक संरचना में शामिल होने चाहिए ताकि वे ऐसी लागतों को अपनी कारोबारी आयोजना और जोखिम प्रबंध में शामिल कर सके। सभी प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्थाएं, बाज़ार और लिखत अपने स्थानीय और वैश्विक प्रणालीगत महत्त्व के आधार पर समुचित स्तर के विनियमन और निरीक्षण के अधीन होने चाहिए। असल में, प्रणालीगत महत्त्व का मूल्यांकन करते समय आकार और संबद्धता की एक साथ जांच की जानी चाहिए। विनियामकों और पर्यवेक्षकों द्वारा वित्तीय स्थिरता के लिए समष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण का स्वीकरण वित्तीय प्रणाली में लचीलेपन को सुदृढ़ करने में सहायता प्रदान करेगा। हालांकि इसका अर्थ यह नहीं है कि समष्टि-विवेकपूर्ण कारक कम महत्त्वपूर्ण हैं। असल में, समष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपने व्यष्टि-विवेकपूर्ण दृष्टिकोण के लिए तर्काधार को शामिल करता है। आवश्यकता इस बात की है कि व्यष्टि-विवेकपूर्ण विनियमन को समझकर उसमें सुधार किया जाए और समष्टि-विवेकपूर्ण विनियमन का विकास किया जाए।

विनियमन और लेखांकन में अनुचक्रीयता को न्यूनतम करने की नीतियां

7.33 हाल के संकट ने जोखिम उठाने और लीवरेज, जो हाल के वर्षों में हुआ, में व्यापक वृद्धि को प्रतिबिम्बित किया। अच्छे समय में जोखिम उठाने की प्रवृत्ति और लीवरेज में वृद्धि हुई तथा खराब समय में जोखिम से अचानक निकलने एवं लीवरेज को कम करने की प्रवृत्ति रही। हाल की घटनाओं से यह स्पष्ट है कि निजी क्षेत्र का व्यवहार और पद्धतियां, विवेकपूर्ण विनियमन और समष्टि-आर्थिक नीतियां चक्रों को बढ़ाने में मदद कर सकती हैं और इसका प्रतिकूल असर पड़ सकता है। कुछ हद तक उचित मूल्य लेखांकन प्रणाली ने भी वित्तीय दबाव को बढ़ाने करने में सहायता की। सुब्रमणियन और विलियमसन (2009ए) ने तर्क दिया "वर्तमान विनियामक प्रणाली न केवल यह पहचानने में असफल रही कि चक्रीयता के कारण प्रणाली में काफी हद तक खतरा है बल्कि यह स्वयं अनुचक्रीय प्रवृत्तियों को पुन: प्रबलित करने की ओर प्रवृत्त हुई"। इस प्रकार मौजूदा विनियामक और संस्थागत पद्धतियों की पुन: जांच यह सुनिश्चित करने के लिए जरूरत है कि वे अनुचक्रीयता के वेग को बढ़ाने का प्रयास नहीं करतीं।

7.34 आईएमएफ के अनुसार (2009ए) बाज़ार सहभागियों और विनियामकों के बीच इस बात का मतैक्य बढ़ रहा है कि वर्तमान ऋण हानि प्रावधानीकरण संबंधी नियम एवं पद्धतियां बहुत ही अल्पावधि सीमा की ओर प्रवृत्त हैं और पश्चगामी दृष्टिकोण वाली हैं, इस प्रकार जोखिम की पहचान बहुत देर से करती हैं और आर्थिक तेजी के दौरान अत्यधिक जोखिम उठाने के लिए प्रेरित करती हैं। भविष्य में संकट के अधिमापी प्रभावों से बचने के लिए नई नीतिगत अनुक्रियाओं को पहचानने की जरूरत है जो अनुचक्रीयता को कम करने में सहायता कर सकें। इस संदर्भ में 'सुदृढ़ विनियमन बढ़ाने और पारदर्शिता को मजबूत करने' से संबंधित जी-20 कार्यदल ने आर्थिक विस्तार के दौरान पूंजी बफर बनाने को बढ़ावा देकर तथा दबाव के समय उचित मूल्यांकन, लीवरेज और परिपक्वता बेमेल के बीच प्रतिकूल पारस्परिक-क्रिया को मंद कर अनुचक्रीयता को कम करने की जरूरत को रेखांकित किया। एंडरिट्जकी आदि (2009) ने सुझाव दिया कि दो मुद्दों पर तत्काल ध्यान देने की जरूरत है, यथा (i) विवेकपूर्ण विनियमनों को स्वीकार करना ताकि प्रति-चक्रीय प्रवृत्तियों का स्पष्ट रूप से मुकाबला किया जा सके, (ii) तेजी-मंदी के समय वित्तीय फर्मों द्वारा चलनिधि जोखिम के न्यून-मूल्यनिर्धारण को समायोजित करने के लिए औपचारिक चलनिधि आस्ति को न्यूनतम कर चलनिधि के बड़े बफरों को प्रोत्साहित करना।

7.35 जिनेवा रिपोर्ट (2009) ने व्यष्टि विनियमन की मौजूदा प्रणाली में समष्टि-विवेकपूर्ण विनियमन की प्रणाली जोड़कर अनुचक्रीयता के मुद्दे का सामना करने का प्रस्ताव किया। यह तेजी के दौरान बैंकों के पूंजी पर्याप्तता अनुपातों को बढ़ाने और संकट के दौरान उनको कम करने में सहायता करेगा। यह तेजी की अवधि के दौरान ऋण की मात्रा में अत्यधिक वृद्धि करने प्रवृत्ति को नियंत्रित करेगा और गिरावट की अवधि के दौरान ऋण देने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करेगा। इसी प्रकार, अधिक आक्रामक प्रावधानीकरण अपेक्षाएं तेजी के दौरान उच्च ऋण वृद्धि की अवधियों के दौरान अनुचक्रीयता को कम करने में सहायता कर सकती हैं। हालांकि ये उपाय तभी वांछनीय होते हैं जब वित्तीय बाज़ारों में स्थितियां स्थिर हो जाती हैं। अनुचित अनुक्रमण और समय-निर्धारण के साथ अनुचक्रीयता को कम करने के उपायों का तेजी से कार्यान्वयन वित्तीय बाज़ारों को और अस्थिर कर सकता सकता है और कमजोर संस्थाओं को नुकसान पहुंचा सकता है। इस बात पर भी चिंताएं जताई गई हैं कि बासेल II पूंजी अपेक्षाओं में विस्तारित जोखिम-संवेदनशीलता संभाव्य अनुचक्रीयता के व्यवहार को बढ़ा सकता है। संकट के प्रति विनियामक अनुक्रिया का सुझाव देते हुए टर्नर समीक्षा (2009) ने अनुशंसा की कि विनियामकों को यह सुनिश्चित करने के लिए तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए कि वर्तमान बासेल II पूंजी व्यवस्था का कार्यान्वयन अनावश्यक अनुचक्रीयता का सृजन न करे। इसे चूक की संभाव्यताओं के उपायों 'समय बिन्दु' की बजाय 'चक्र के माध्यम' का उपयोग कर हासिल किया जा सकता है। इसने इस बात पर भी बल दिया कि सामान्य रूप से विनियामक ढाँचा और विशेष रूप से इसका पूंजी घटक कारोबार चक्र को नहीं बढ़ाते हैं। अनुकूल चक्रीयता के मुद्दे के निवारण के लिए विनियामकों को निम्नलिखित पर ध्यान केंद्रित करना होगा (i) बाज़ार जोखिम प्रबंधन प्रतिमानों में सुधार और विशाखन करना, (ii) उन कारकों की पहचान करना जो चक्रों को बढ़ाते हैं, (iii) अधिक कठोर दबाव परीक्षण करना, और (iv) उनकी अंतर्निहित अनुचक्रीयता को मंद करने के लिए पूंजी गणना हेतु अग्रदर्शी प्रक्रियाओं को स्वीकार करना। इसी संदर्भ में यूरोपीय संघ में वित्तीय पर्यवेक्षण पर उच्चस्तरीय दल (अध्यक्ष : जैक्स डी लारोसीयर) ने फरवरी 2009 की अपनी रिपोर्ट में यह पाया कि संकट का बड़ा कारण बासले II नियमों को स्वत: दोषी ठहराना उचित नहीं है। हालांकि रिपोर्ट बासेल II की बुनियादी समीक्षा पर बल देती है।

पारदर्शिता और प्रकटन को बढ़ाना

7.36 हाल की घटनाएं इस तथ्य का प्रमाण हैं कि जब सूचना अपूर्ण होती है तब बाज़ार प्राय: ठीक से कार्य नहीं करते। वित्त में सूचना की अपूर्णता प्रमुख होती हैं और संबद्ध बाह्यताएं व्यापक होती हैं। संकट ने जिन प्रमुख कमजोरियों पर प्रकाश डाला है, उनमें जटिल संरचित वित्त उत्पादों और ओटीसी बाज़ार में अंतर्निहित पारदर्शिता की कमी है, जिन्होंने बाज़ार चलनिधि को कम करने में योगदान दिया। संरचित उत्पादों के मामले में जोखिम प्रकटन पारदर्शिता का प्रमुख घटक है। जी-20 कार्यदल I ने अपनी रिपोर्ट (मार्च 2009) में यह नोट किया कि कई मामलों में निवेशकों और अन्य बाज़ार प्रेक्षक उन विभिन्न उत्पादों के मूल्य निर्धारण, व्यापार की मात्रा और सकल अस्थिर ब्याज राशि के बारे में केवल न्यूनतम जानकारी ही प्राप्त कर पाये जिनका ओटीसी बाज़ारों में लेनदेन होता है।

7.37 असल में कई ऐसे क्षेत्र हैं जिनकी पारदर्शिता में कमी ने विश्वास खोने में योगदान दिया और संकट गहराया। एक विशेष क्षेत्र ओवर-दि-काउंटर प्रतिभूतियों का क्षेत्र है जैसे, आस्ति समर्थिक प्रतिभूतियां (एबीएस), वाणिज्यिक बंधक-समर्थित प्रतिभूतियां (सीएमबीएस), आवासीय बंधक-समर्थिक प्रतिभूतियां (आरएमबीएस) तथा संपार्श्विकृत ऋण बाध्यताएं (सीडीओ) और उनसे संबद्ध व्युत्पन्नियों का मामला । प्रतिपक्षी जोखिम में अपारदर्शिता के प्रणालीगत परिणामों को देखने के लिए विनियामकों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि व्युत्पन्न संविदाएं समाशोधन गृह के माध्यम से समाशोधित की जाती हैं, जिससे प्रतिपक्षी जोखिम को मापने की समस्या का विलोपन किया जा सके।

7.38 संरचित वित्तीय लिखितों की रेटिंगों से जुड़ी पारदर्शिता का भी मुद्दा था। चूंकि संरचित वित्तीय उत्पाद निवेशकों की अधिसंख्य श्रेणीयों द्वारा समझने के लिए बहुत ही जटिल थे, अत: निवेशकों ने समुचित सावधानी बरतने की बजाय ऋण रेटिंगों पर अत्यधिक विश्वास किया। इस जटिलता का अर्थ यह भी हुआ कि सब-प्राइम ऋण के एक्सपोजर का निर्धारण करना कठिन हो गया था जिसने प्रतिपक्षी जोखिमों के निर्धारण की कठिनाइयों को बढ़ाया। इसके अलावा, जैसे ही बाज़ार गिरा, आस्तियों के उचित मूल्य के अनुमान के संबंध में चिंताएं बढ़ गईं। टर्नर (2009) ने पाया कि कुछ बैंक सही अर्थ में 'प्रवर्तन और वितरण' का कार्य रहे थे, लेकिन अन्य बैंकों (और

कभी-कभी उसी बैंक) के व्यापारिक परिचालन 'अधिगृहीत और अंतरपणन' के कार्य कर रहे थे। हालांकि यह स्पष्ट है कि लीवरेज ने हानियों के बढ़ाने में भूमिका निभाई, पर इसे बेहतर ढंग से समझने की जरूरत है कि जोखिमों को फैलाने और विशाखन के लिए तैयार किये गये लिखत जोखिमों के संकेंद्रण के रूप में कैसे परिणत हो गये। नये मॉडल ने अधिकांश जोखिमों को बैंकों और बैंक-जैसी संस्थाओं के तुलनपत्रों में, अधिक जटिल और कम पारदर्शक ढंग से छोड़ दिया।

7.39 पारदर्शिता की कमी ने न केवल विनियामकों की जोखिम निर्धारण कार्यप्रणाली को अपर्याप्त बना दिया, बल्कि निवेशकों को भी निवेश करने का निर्णय लेने से पूर्व समुचित सावधानी बरतने से रोक दिया। इस प्रकार, संकट ने तकनीकों, आंकड़ों की विशिष्टता, और जटिल वित्तीय लिखतों के मूल्यांकन के से जुड़ी चेतावनियों; ओटीसी बाज़ारों और समाशोधन व्यवस्थाओं से संबंधित उन्नत सूचना; एक्सपोजर (तुलनपत्र और इससे इतर) को एक प्ररूप में रिपोर्ट करना, जो विनियामकों को पूरी प्रणाली में जोखिम के संचय और उसका मूल्यांकन करने की अनुमति प्रदान करता है, के बारे में अधिक बाज़ार पारदर्शिता की जरूरत पर बल दिया। इसके अलावा, संकट ने वित्तीय संस्थाओं द्वारा सार्वजनिक प्रकटन की कमियों को उजागर किया। बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के तुलनपत्र और इससे इतर एक्सपोजर से संबद्ध जोखिम के प्रकार और परिमाण के संबंध में पर्याप्त प्रकटन में कमी ने हलचल के दौरान बाज़ार विश्वास को नुकसान पहुंचाया।

7.40 पारदर्शिता में कमी के मुद्दे के निवारण के लिए प्रयास पहले ही शुरू कर दिये गये हैं। इस दिशा में, कई लेखांकन मानक निर्धारक निकायों ने जटिल वित्तीय उत्पादों सहित वित्तीय लिखतों के मूल्यांकन के लिए प्रत्याशाएं स्पष्ट करने के लिए दिशानिर्देश प्रदान किये हैं। इसके अलावा, जी-20 कार्यदल I (मार्च 2009) ने पाया कि कई अधिकार क्षेत्रों में विवेकपूर्ण पर्यवेक्षकों ने अपने अंतरराष्ट्रीय रूप से सक्रिय वित्तीय संस्थाओं को वित्तीय स्थिरता मंच (एफएसएफ) के वरिष्ठ पर्यवेक्षकों के दल द्वारा दी गई रिपोर्ट में संबोधित अग्रणी जोखिम प्रकटन पद्धतियों को स्वीकार कर प्रकटन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करने के प्रयास किये हैं। आईएमएफ के अनुसार (2009बी) पारदर्शिता उपाय जहां अंतिम निवेशकों को समुचित सावधानी बरतने जैसे कार्य, जो वर्तमान में रेटिंग एजेंसियों से करवाया जाता रहा है, खुद करने में मदद करेंगे वहीं यह रेटिंग एजेंसियों को अप्रत्याशित जोखिमों की माप बेहतर ढंग से करने में सहायता करेंगे।

7.41 संक्षेप में, वित्तीय विनियमन की समीक्षा करने की जरूरत पर व्यापक मतैक्य है। वैश्विक जोखिम के नये माहौल और घटनाओं की गति में अत्यधिक वृद्धि हुई है, जिसने नीतिनिर्माताओं के लिए उचित नीतिगत अनुक्रिया के लिए कम समय छोड़ा है। पर्यवेक्षकों के लिए प्रमुख सबक है - नये जोखिमों, विशेषकर त्वरित वित्तीय नवोन्मेष के रूप में, के आविर्भाव के प्रति सतर्क बने रहने की जरूरत। उन्हें वित्तीय प्रणाली के नियंत्रित और अनियंत्रित खण्डों की बढ़ती अंतर-संबद्धता का उचित संज्ञान लेने की भी जरूरत है। वित्तीय विनियमन और पर्यवेक्षण के समयानुसार होने और इनसे जुड़े कौशल एवं लिखतों में सतत उन्नयन किये जाने की जरूरत है। इसके अलावा, यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि विवेकपूर्ण व्यवस्था ऐसे प्रोत्साहनों को आगे बढ़ाती हो जो प्रणालीगत स्थिरता को मदद पहुंचाती हो और विनियामक अंतरपणन को निरुत्साहित करती हो एवं विनियमन के कारगर प्रवर्तन का आश्वासन देती हो। पर्यवेक्षी संस्थाओं के लिए इस बात की उच्च प्राथमिकता होनी चाहिए कि किस प्रकार पर्यवेक्षण की प्रभावशीलता को बढ़ाया जाए। साथ ही यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि अति-विनियमन से अर्थव्यवस्था की गतिशीलता या आगे नवोन्मेष करने के प्रोत्साहनों को बाधा न पहुचती हो।

सीमापारीय संस्थाओं का कारगर विनियमन

7.42 गत दशक में अधिक वैश्विक वित्तीय एकीकरण और सीमापारीय उधार एवं निवेश में उल्लेखनीय वृद्धि होने से एक देश या क्षेत्र के वित्तीय संकट का अन्य अर्थव्यवस्थाओं पर बड़े स्तर का नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। संकट-पूर्व की अवधि के दौरान राष्ट्रीय पर्यवेक्षी प्राधिकारी वैश्विक रूप से सक्रिय और प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं में बनती अरक्षितताओं के बारे में जानकारी के आदान-प्रदान तथा उनकी पहचान करने में स्पष्ट रूप से सक्रिय नहीं थे। इस प्रकार, संकट ने वैश्विक स्तर पर परिचालित प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं, बाज़ारों और लिखतों के कार्यकलापों के संबंध में स्थानीय नीतिगत अनुक्रियाओं की सीमाओं को स्पष्ट रूप से प्रकट किया।

7.43 इसके मद्देनजर ऐसी सीमापारीय संस्थाओं के विनियमन के लिए सुदृढ़ ढाँचा बनाना आवश्यक हो गया है जो गृह और मेज़बान देशों के प्राधिकारियों की भूमिकाओं और जिम्मेदारियों के बारे में निर्देशन प्रदान करती हो। आईएमएफ (2009बी) ने भी सीमापारीय संस्थाओं के विनियमन और समाधान के राजनीतिक और विधिक अड़चनों को दूर करने की जरूरत पर बल दिया है। अंतरराष्ट्रीय रूप से बेहतर समन्वित पर्यवेक्षण और सुदृढ़ वैश्विक समाधान ढाँचे की जरूरत पर बल देते हुए मोहन (2009बी) तर्क देते हैं कि विनियामक अंतरपणन से बचने के लिए देश के भीतर और बाहर, दोनों जगह एक जैसे लिखतों और एक जैसा कार्यकलाप करने वाली संस्थाओं के विनियमन में अधिक सुसंगतता की जरूरत है।

7.44 इस संदर्भ में टर्नर समीक्षा (2009) द्वारा की गई कुछेक अनुशंसाएं उल्लेखनीय हैं। इनमें शामिल हैं (i) सर्वाधिक जटिल और सीमापारीय वित्तीय संस्थाओं के लिए पर्यवेक्षकों हेतु कॉलेजों की स्थापना और कारगर परिचालन, (ii) विनियामक मानकों पर वैश्विक करारों में शामिल किये जाने वाले अपतटीय वित्तीय केंद्र, और (iii) संकट समन्वय कार्यप्रणालियां और आकस्मिकता योजनाएं पहले से ही तैयार करने के लिए पर्यवेक्षकों, केंद्रीय बैंकों और वित्त मंत्रियों के बीच अंतरराष्ट्रीय सहयोग बढ़ाना। इसके अलावा इसने नई यूरोपीय संस्था गठित करने का सुझाव दिया जिसके पास विनियामक शक्तियां, मानक निर्धारक और पर्यवेक्षण के क्षेत्र में निरीक्षक वाले स्वतंत्र प्राधिकार होंगे तथा समष्टि-विवेकपूर्ण विश्लेषण में उल्लेखनीय रूप से सन्निहित होगी, जबकि अलग-अलग संस्थाओं का पर्यवेक्षण राष्ट्रीय स्तर पर करना जारी रहेगा। संकट ने अंतरराष्ट्रीय विधिक ढाँचे की कमजोरियों का स्पष्ट रूप से संकेत किया है जो वैश्विक फर्म/बैंक के असफल होने पर उचित समाधान की गारंटी प्रदान कर सकती है। अत: उन देशों के नीतिनिर्माताओं को ऐसे विधिक अवरोधों के समाधान के लिए सहयोग और समन्वय करना चाहिए जहां बड़ी सीमापारीय वित्तीय संस्थाएं सक्रिय रूप से कार्यरत हैं।

गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के लिए समाधान व्यवस्था

7.45 संकट से उभरा एक सबक है अमेरिका जैसी अर्थव्यवस्थाओं में गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं के लिए समाधान व्यवस्था का महत्त्व, क्योंकि उनके पास बैंकों की तुलना में वित्तीय मध्यस्थीकरण का बड़ा हिस्सा है। अत: अमेरिका में विनियामकों को निर्देशित करने वाला सिद्धांत इस आधार-वाक्य पर आधारित था कि किसी गैर-बैंक की असफलता की तुलना में किसी बैंक की असफलता संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए अधिक नुकसानदायक होगी। संकट के फैलने पर यह आधार-वाक्य गलत सिद्ध हुआ। गैर-बैंक व्युत्पन्नी बाज़ारों के बहुत बड़े खिलाड़ी हैं। गैर-बैंक वित्तीय संस्थाओं के लिए पर्याप्त समाधान व्यवस्था के अभाव में अमेरिकी प्राधिकारी प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण निवेश बैंक या बचाव निधि को दिवालियापन के अध्याय 11 के अंतर्गत लाने के लिए तैयार नहीं थे। ऐसे मामलों में प्राधिकारियों के पास सीमित विकल्प थे। गोल्डस्टीन (2008) ने सुझाव दिया कि बड़े निवेश बैंकों को "विवेकपूर्ण विनियामक" के पर्यवेक्षण के अधीन रखने की जरूरत है। फेडरल जमा बीमा अधिनियम के अंतर्गत बैंकों के लिए वर्तमान व्यवस्था के पूरक के रूप में प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण गैर-बैंक संस्थाओं के लिए समाधान व्यवस्था होनी चाहिए। तारुल्लो (2009) ने पाया कि हालांकि अधिकांश मामलों में फेडरल दिवालिया कानून गैर-बैंक वित्तीय संस्थाओं के समाधान के लिए उचित ढाँचा प्रदान करते हैं लेकिन यह ढाँचा गैर-जमाकर्ता वित्तीय संस्थाओं का सुव्यवस्थित समाधान सुनिश्चित करने में जनता के हित को पर्याप्त संरक्षण उस समय प्रदान नहीं करता, जब असफलता पर्याप्त प्रणालीगत जोखिम प्रस्तुत करेगी। इस प्रकार अमेरिका जैसे देशों में 'असफल होने के लिए बहुत बड़े' समस्या के समाधान के लिए गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं हेतु उचित समाधान व्यवस्था की जरूरत है।

वाणिज्यिक और निवेश बैंकिंग का मिश्रण करना

7.46 महामंदी ने यह प्रदर्शित किया था कि बैंक आर्थिक रूप से इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उन्हें असफल होने नहीं नहीं दिया जा सकता। हाल के संकट की घटना के घटित होने पर कई लोगों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि वित्तीय अविनियमन ने महामंदी के बाद पहली बार उन्हें असफल होने से रोकने के लिए तैयार किये गये विधान को हटा दिया गया। यह व्यापक रूप से अनुभव किया जाता है कि वित्तीय संकट के कारणों में से एक अविनियमन और विशेष रूप से ग्राम-लीच बलिले अधिनियम (1999) रहा है जिसके मर्म में निवेश और वाणिज्यिक बैंकिंग के मिश्रण को निषिद्ध करने वाले ग्लास-स्टीगल अधिनियम (1933) का निरसन किया जाना था। ग्राम-लीच बलिले अधिनियम ने निवेश और वाणिज्यिक बैंकों के विलयन के रास्ते को सुगम बनाया, इस प्रकार निवेश बैंकों को अधिक जोखिम उठाने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया, वहीं डॉलर आस्तियों के बदले में उनके द्वारा इक्विटी धारण की अपेक्षित राशि को कम कर दिया (हादर 2009)।

इसके अलावा, वित्तीय इंजीनियरिंग पूरे वित्तीय सेवा क्षेत्र की विशेषता को तेजी से बदल रही थी। प्रतिभूतिकरण और संबद्ध व्युत्पन्न लिखत पूंजी बाज़ारों और परंपरागत उधार देने के कार्यकलापों का विलय कर रहे थे जिसने आभासी बैंकिंग प्रणाली की बढ़ावा दिया। इसके परिणामस्वरूप कई बैंकों का आस्ति मिश्रण और निधीयन के स्रोत, कभी-कभी नाटकीय ढंग से, बदल रहे थे (तारुल्लो 2009)। अधिकांश बड़े वाणिज्यिक बैंक प्रतिस्पर्धी प्रतिभूति बाज़ारों में स्वयं अपनी पूंजी जुटाने की जरूरत का सामना कर रहे थे, धीरे-धीरे व्यापारिक लाभों पर आश्रित हुए, अंततः स्वयं को बचाव निधियों में बदल लिया। दूसरी ओर, पर्याप्त व्यापारिक परिचालनों में लगे अधिकांश बड़े निवेश बैंकों ने धीरे-धीरे स्वयं को निधि प्रदान करने के लिए पुनर्खरीद करारों का उपयोग किया जिससे अल्पकालिक जमाराशियां प्राप्त हुईं। वाणिज्यिक और निवेश बैंकिंग कार्यकलापों के बीच ऐसे धुंधले अंतर ने वित्तीय प्रणाली को अधिक अरक्षित बना दिया।

7.47 अमेरिका में ग्राम-लीच बलिले बैंक सुधार अधिनियम के अनुमोदन ने वित्तीय कार्यकलापों की अधिक व्यापक श्रृंखला में लगने और विनियामक अवरोध के बिना योजनाओं एवं सेवाओं की पूरी श्रृंखला प्रदान करने के लिए बैंकों को प्रोत्साहित किया। ऐसे अविनियमन ने धीरे-धीरे जोखिमपूर्ण नवोन्मेष की अनुमति प्रदान की जिसने प्रणाली को अधिक अरक्षित बना दिया। कई बड़े बैंक धीरे-धीरे सीधे या अपनी संबद्ध संस्थाओं के जरिये परोक्ष रूप से विशेष प्रयोजन संस्था के प्रायोजन और प्रबंधन के द्वारा प्रतिभूतिकरण प्रक्रिया में लग गये। साथ ही, यह तर्क दिया गया कि संकट के फैलने पर असफल होते बैंकों के विलयन और अधिग्रहण की अनुमति प्रदान कर ग्राम-लीच बलिले अधिनियम ने संकट के प्रभाव को कम किया। कुट्टनर (2007) ने भी बंधक संकट के अंशदायी कारकों के रूप में ग्लास स्टीगल अधिनियम के निरसन को माना। वॉलकर (2009) ने वाणिज्यिक और निवेश बैंकिंग को अलग-अलग करने की जरूरत पर बल दिया। हालांकि हाल के वर्षों में वित्तीय नवोन्मेष की बाढ़ ने ग्लास स्टीगल अधिनियम के अनुरूप वाणिज्यिक और निवेश बैंकिंग को पुनः अलग करना असंभव बना दिया है, अमेरिका में वित्तीय विनियमन के ढाँचे में ऐसे जोखिमों के निवारण के लिए आमूलचूक सुधार करने की जरूरत है जो वैश्विकृत संसार में उत्पन्न हो सकते हैं। अमेरिका के संदर्भ में अमेरिका में सुधार कार्यसूची के हिस्से के रूप में वॉलकर नियम प्रस्तावित किया जा रहा है जिनके अंतर्गत बैंकों को अपने स्वयं के लाभ के लिए अपने ग्राहकों की सेवा से असंबद्ध बचाव निधियों, निजी इक्विटी निधियों या स्वामित्व ट्रेडिंग परिचालनों का स्वामित्व, उनमें निवेश या उनका प्रायोजन करने की अनुमति नहीं होगी। प्रस्ताव जमाराशियों के बाज़ार हिस्से पर मौजूदा अधिकतम सीमा के पूरक के रूप में बड़ी वित्तीय संस्थाओं की देयताओं के बाज़ार हिस्से में अत्यधिक वृद्धि पर स्पष्ट सीमाएं रखेगा।

7.48 संक्षेप में, विनियामकों को यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि (i) ऋण और इक्विटी संस्कृतियों को मिलाया नहीं जाये, (ii) पूंजी संबंधी नियमों को कुशलतापूर्वक लक्षित किया जाये, और (iii) यह सुनिश्चित किया जाए कि लीवरेज की लागत पर्याप्त अधिक हो ताकि उनका आकार और जोखिम उठाने के कार्यकलापों पर उचित प्रकार से नियंत्रण लगाया जा सके। हाल के संकट का महत्त्वपूर्ण सबक यह है कि नीतिनिर्माताओं को वित्तीय विनियमनों को बाज़ार पर आर्थिक भार के रूप में नहीं मानना चाहिए, बल्कि वित्तीय प्रणाली को अचानक विघटन के प्रति सशक्त बनाने की दिशा में किये गये उपायों के रूप में और मंदी से उबरने के लिए सरकार के भावी बेलआउट संबंधी बाध्यताओं को कम करने के रूप में मानना चाहिए।

क्षतिपूर्ति संरचना

7.49 संकट के विश्लेषण से पता चलता है कि अत्यधिक जोखिम उठाने के लिए आंशिक रूप से क्षतिपूर्ति योजनाएं भी जिम्मेदार थीं। क्षतिपूर्ति योजनाओं ने प्रबंधकों को अल्पकालिक प्रतिलाभों के लिए दीर्घकालिक संभावनाओं का त्याग करने के लिए प्रोत्साहित किया। बाज़ार सहभागियों अर्थात् व्यापारियों, ऋण प्रबंधकों, जोखिम समितियों और निदेशक मंडलों को अल्पकालिक लाभों पर ध्यान केंद्रित करने के लिए ठोस आर्थिक प्रोत्साहन दिये गये। बीआईएस (2009) के अनुसार कुछ मामलों में पुरस्कारों का निर्धारण करने के लिए जटिल गणितीय मॉडलों का प्रयोग तब भी किया जाता था जब गणना में अंतर्निहित आस्तियों के बाज़ार मौजूद नहीं होने से वे बेची नहीं जा सकती थीं। इसके परिणामस्वरूप, इक्विटी-धारियों और आस्ति प्रबंधकों को जोखिम उठाने के लिए अनावश्यक रूप से क्रमशः उनकी सीमित देयता और क्षतिपूर्ति प्रणाली के लिए पुरस्कृत किया गया। हालांकि, गिरावट का प्रतिकूल प्रभाव मुख्यतः लेनदारों या सरकार को वहन करना पड़ा। यह प्रकट करता है कि वित्तीय संविदाएं तैयार करने में अल्पकालिक कारकों को ठीक करने की जरूरत है। वित्तीय संकट

से संबंधित विभिन्न प्रमुख रिपोर्टों की अनुशंसाओं के अनुरूप कार्यपालकों की क्षतिपूर्ति योजनाओं और पद्धतियों में सुधार वित्तीय स्थिरता हासिल करने के लिए नीति का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए। इस संदर्भ में, स्क्वाम लेक रिपोर्ट (जून 2010) ने क्षतिपूर्ति के बड़े हिस्से के स्थगन का सुझाव दिया जो फर्मों की सतत सुदृढ़ता पर निर्भर करता था।

वित्तीय नवोन्मेष की प्रभावोत्पादकता

7.50 जोखिम प्रबंध पद्धतियों के बिना वित्तीय नवोन्मेष में त्वरित वृद्धि ने संकट को और बढ़ाया। ऋण चूक अदला-बदली और संपार्श्विकृत ऋण बाध्यताएं जैसे वित्तीय नवोन्मेष से जोखिम के कुशल आबंटन को बढ़ावा देने की अपेक्षा थी, अत: उन बाज़ार सहभागियों को आस्ति के जोखिम को वहन करने दिया जाए जो उसे बेहतरीन ढंग से वहन कर सकते हैं। पोसेन (2009) ने विस्तार से बताया कि ऐसे जोखिम के भार से मुक्त गैर-वित्तीय कंपनियों से अधिक उत्पादक पूंजी निर्माण में लगने की अपेक्षा थी जो संपूर्ण अर्थव्यवस्था के लिए विकास उत्पन्न करतीं। हालांकि नई वित्तीय उत्पादों की वृद्धि ने वैश्विक स्तर पर और अमेरिका में नियत पूंजी निर्माण को बड़े स्तर पर पीछे छोड़ दिया। ऐसा लगता है कि नवोन्मेषी जटिल वित्तीय योजनाओं में वृद्धि और वास्तविक कॉरपोरेट निवेश के बीच केवल एक कमजोर कड़ी है। इस संदर्भ में संयुक्त राष्ट्र (सितम्बर 2009) की रिपोर्ट में यह तर्क दिया गया कि अनियंत्रित बाज़ार शक्तियों ने ऐसी वित्तीय योजनाओं का प्रचुर मात्रा में सृजन करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान किया, जिनकी सामाजिक लक्ष्यों को पूरा करने और सामाजिक लक्ष्यों के लिए सहायता प्रदान करने वाली वित्तीय योजनाओं के न्यून-उत्पादन में थोड़ी सार्थकता थी। इस प्रकार, वित्तीय नीतिनिर्माताओं की भूमिकाओं में से एक वित्तीय उत्पाद विकास में इन बाज़ारों की असफलता को दूर करना था।

7.51 यद्यपि वित्तीय नवोन्मेष उपभोक्ताओं, वित्तीय प्रणाली और व्यापक अर्थव्यवस्था के लिए लाभप्रद हो सकता है, लेकिन उनके जोखिमों को बाज़ार संस्थाओं द्वारा ठीक प्रकार से नहीं समझा जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि नवोन्मेष भी विनियमन को कम आंकने के लिए जटिलताएं पैदा करने के उद्देश्य से किये गये थे। इस संदर्भ में वित्तीय मामलों के प्रति जागरूकता बढ़ाने और सुधारने तथा आर्थिक एवं वित्तीय शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए भी सार्वजनिक नीति की जरूरत है। ब्युटर (2009) प्रकट करते हैं कि नवोन्मेषों को असली माना जाता है और संभाव्य रूप से सामजिक तौर पर उपयोगी (ब्याज दर अदला-बदली, प्रतिभूतिकरण, सीडीएस) का प्राय: दुरुपयोग किया जाता है और ये सामाजिक रूप से नुकसानदायक हो गये। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि इन योजनाओं के लिए विनियामकों द्वारा अनुमति प्रदान करने से पहले इनका ठीक प्रकार से पुनरीक्षण किया जाना चाहिए। इसके अलावा, बैंकों को नये वित्तीय लिखतों के संभावित गैर-इरादतन परिणामों की अधिक व्यापक ढंग से मूल्यांकन करने की जरूरत है और यह देखने कि दबावग्रस्त बाज़ार स्थितियों में ये लिखत किस प्रकार कार्य करेंगे। इस प्रकार, यह आवश्यक है कि प्रतिभूतिकरण जैसे नवोन्मेषों का सुदृढ़ विनियामक ढाँचे के भीतर विकास किया जाना चाहिए, जिसमें प्रणालीगत कार्यकुशलता और प्रभावशीलता को बढ़ाने की क्षमता है।

7.52 इस बात की संभावना बहुत कम है कि संकट के कारण वित्तीय नवोन्मेष की प्रक्रिया रूक जायेगी। हालांकि नीतिनिर्माताओं को यह निर्णय लेना है कि ऐसी योजनाओं से संबंधित वित्तीय संस्थाओं के विनियमन और पर्यवेक्षी निरीक्षण को कितना बढ़ना है। साथ ही, वास्तविक नवोन्मेष के लिए समर्थनकारी माहौल सुनिश्चित कर सुधारों के प्रति उनके दृष्टिकोण में सतर्क भी रहना है। अति-विनियमन द्वारा वित्तीय नवोन्मेष की प्रक्रिया में बाधा नहीं डालनी चाहिए। इसके बजाय विनियामकों को जिम्मेदार नवोन्मेष को प्रोत्साहित करना चाहिए जिसे ठीक प्रकार से लागू किया जा सके और जो उपभोक्ता कल्याण में वृद्धि कर सके। पोसेन (2009) ने सुझाव दिया कि भले ही कई वित्तीय नवोन्मेष लाभकारी हों, उन सब पर विनियामकों द्वारा दीर्घकाल तक निगरानी रखने, साथ ही उनकी सुरक्षा और प्रभावशीलता की जांच के लिए जारी करने से पूर्व संवीक्षा की जरूरत है। इसके अलावा, वित्तीय संस्थाओं को अपने तुलनपत्रों में अधिक पूंजी और चलनिधि की गुंजाइश की जरूरत है। यह अधिक विवेकसम्मत व्यवहार को बढ़ावा देने में सहायक होगी क्योंकि एक वित्तीय मध्यवर्ती उत्पाद नवोन्मेष के माध्यम से अपने तुलनपत्र को बढ़ाना चाहती है। वित्तीय नवोन्मेष को वित्तीय स्थिरता के व्यापक संदर्भ में देखे जाने की जरूरत है और अनिवार्य रूप से वित्तीय प्रणाली की परिपक्वता के स्तर तथा वास्तविक अर्थव्यवस्था की जरूरतों के अनुरूप होना चाहिए। संक्षेप में, विनियामकों को "जिम्मेदार नवोन्मेष" की अनुमति देनी चाहिए जो उपभोक्ता कल्याण को बढ़ाता है। अत्यधिक विनियमन वित्तीय नवोन्मेष के लाभों से वंचित नहीं करता, यह सुनिश्चित करने के लिए विनियामकों को बेहतर निर्णय और अंतर्दृष्टि की जरूरत होगी।

मौद्रिक और विनियामक/पर्यवेक्षी प्राधिकारियों के बीच नीतिगत समन्वय

7.53 हाल का संकट इस बात पर प्रकाश डालता है कि बाज़ार के स्व-विनियमन की सीमाएं हैं। बाज़ार के असफल होने की संभावना से बचने के लिए मौद्रिक और विनियामक अधिकारियों को विशेषकर आस्ति मूल्य के बुलबुले के बनने के दौरान (विगत की तुलना में) बेहतर समन्वय करने की जरूरत है। प्राधिकारियों द्वारा जिम्मेदारियों के विभाजन को स्पष्ट करने की जरूरत है ताकि बैंकों द्वारा वित्तीय दबाव की स्थिति का सामना करने में विवादों का समाधान करने के लिए सूचना के आदान-प्रदान, उनकी अपनी-अपनी भूमिकाओं का समन्वय और रणनीतियां तैयार करने के लिए उचित प्रक्रिया मौजूद हो। हाल के संकट (अर्थात् नॉदर्न रॉक को संकट से उबारने के अवसर पर) के दौरान सुस्पष्ट "संप्रेषण" की असफलता दो अलग एजेंसियों के कार्यों के समन्वय में निहित मुद्दों की ओर इशारा करती है। बेहतर समन्वय एजेंसियों के दोनों समूहों की नीतियों के बीच सुसंगतता और संबद्धता लायेगा।

7.54 हाल के संकट के दौरान यह महसूस किया गया कि अस्पष्ट विधानों के कारण एक ही क्षेत्राधिकार के भीतर भी विनियामकों के बीच सूचना के उचित प्रवाह की कमी थी (आईएमएफ, 2009बी)। अंतर-एजेंसी समन्वय पर बल देते हुए सुब्बाराव (2008) ने तर्क दिया कि वित्तीय स्थिरता के संबंध में केंद्रीय बैंकों, विनियामकों, पर्यवेक्षकों और राजकोषीय प्राधिकारियों को अपनी-अपनी भूमिकाओं को पुन: देखने की जरूरत है। केंद्रीय बैंकों को वित्तीय स्थिरता बनाये रखने में केंद्रीय भूमिका निभानी चाहिए और ऐसा कारगर ढंग से करने के लिए आवश्यक सूचना आधार होना चाहिए। इसका अर्थ है वित्तीय स्थिरता बनाये रखने के कार्य सौंपी गई सभी एजेंसियों के बीच गहन सहयोग है। केंद्रीय बैंकों और अन्य पर्यवेक्षी एवं विनियामक एजेंसियों के बीच बेहतर समन्वय न केवल वित्तीय प्रणाली की अधिक कार्यक्षम कार्यप्रणाली हासिल करने के लिए संस्थागत व्यवस्थाएं उपलब्ध कराने और वित्तीय स्थिरता उपायों में अधिक कारगर समन्वय के द्वारा हासिल किया जा सकता है बल्कि मौद्रिक और वित्तीय स्थिरता को बढ़ावा देने में उनके संबंधित अधिदेशों को अधिक स्पष्टता से निर्दिष्ट करके प्राप्त किया जा सकता है। सूचना का प्रभावी आदान-प्रदान और गहन समन्वय न केवल संकट के कुशल प्रबंधन के लिए, बल्कि नकारात्मक फैलाव, प्रतिस्पर्धा में विघटन और विनियामक अंतरपणन से बचने के लिए भी आवश्यक है। एकीकृत बाज़ार और पर्यवेक्षण संगठन की वास्तविकता के बीच अधिक सुसंगति शुरू करने के लिए समन्वय कार्यप्रणाली की जरूरत है।

7.55 जेनकिन्सन (2007) की यह राय थी कि जैसे-जैसे बाज़ार अधिक अंतर-संबद्ध होते जाते हैं, राष्ट्रीय, साथ ही अंतरराष्ट्रीय विनियामकों को अधिक घनिष्टता, उनके निरीक्षण एवं परिचालन संबंधी कार्यकलापों में सहयोग और उनके जोखिम मूल्यांकनों में समन्वय से कार्य करना होता है। हालांकि, दो अलग-अलग मत हैं। उदाहरणार्थ, नीयर (2009) ने केंद्रीय बैंकों के पास पहले से उपलब्ध साधनों और वित्तीय विनियमन में विस्तारित भूमिका के बीच कई प्रकार का सामंजस्य माना तथा यह सुझाव देते हैं कि वित्तीय विनियमन में केंद्रीय बैंकों की विस्तारित भूमिका वित्तीय विनियमन की प्रभावशीलता को बढ़ा सकती है। गोल्डस्टीन (2008) ने तर्क दिया कि "यदि किसी एक (अर्थात् मौद्रिक प्राधिकारी) को अधिक करने से रोका जाता है, तो अन्य (अर्थात् विनियामक प्राधिकारी) को अधिक प्रभावशाली ढंग से कार्य करना होगा"। अत: देश के भीतर और बाहर, दोनों जगह समन्वय के लिए कार्यप्रणाली स्थापित कर प्रणालीगत संकटों के प्रति अनुक्रिया देने के लिए राष्ट्रीय प्राधिकारियों की क्षमता में सुधार की जरूरत है।

7.56 संकट का सामना करने के लिए केंद्रीय बैंकों और विनियामकों के बीच समन्वय ही जरूरी नहीं है बल्कि कई देशों के प्राधिकारियों द्वारा दिये गये बाज़ार समर्थन को वापस लेने के लिए ठोस निकास रणनीतियां तैयार करना और नये एवं अधिक स्थिर बाज़ार संरचना के लिए संधिकाल की रूपरेखा बनाना भी महत्त्वपूर्ण है। हालांकि इसके लिए सतर्क आयोजना और अंतरराष्ट्रीय सहयोग की जरूरत होती है ताकि बाज़ार विघटन से बचा जा सके तथा प्रणालीगत जोखिम के उचित स्तर पर बाज़ारों के पुनरुज्जीवन को बढ़ावा दिया जा सके। इसके अलावा, मौद्रिक और राजकोषीय विस्तारों से निकास रणनीतियां तैयार करने के लिए वित्त मंत्रियों, केंद्रीय बैंकों और विनियामकों के बीच अधिक समन्वय की अपेक्षा होगी जो गिरावट की गति को कम करने के लिए अपनाई गई थीं।

7.57 अंत में, हाल के संकट के दौरान बाज़ार के स्व-विनियमन की संकल्पना की असफलता ने विनियामकों और पर्यवेक्षकों के लिए सबकों के बारे में अत्यधिक विवाद उत्पन्न कर दिया है। हालांकि व्यक्त किये गये विचारों में अंतर हैं लेकिन वे मोटे तौर पर जोखिम प्रबंधन, हामीदारी, मूलभूत वित्तीय प्रबंधन, संकेंद्रण जोखिमों (अर्थात्

आस्ति, निधीयन और प्रतिपक्षी) की बेहतर पहचान और उचित अभिशासन संरचनाओं में बुनियादी कमियों की ओर इशारा करते हैं। यह तथ्य कि लाभोन्मुखी निजी वित्तीय फर्मों द्वारा स्व-विनियमन आज के जटिल वित्तीय बाज़ारों द्वारा प्रस्तुत चुनौतियों का सामना करने के लिए अपर्याप्त सिद्ध हुआ है, अत: प्रजातांत्रिक अभिशासन का मूल सिद्धांत अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि प्रबंधकीय प्रोत्साहन फर्म के अंतिम स्वामियों की तुलना में प्राय: अनूठे पाये जाते हैं। इसके अलावा, हाल के दशकों में हुए वित्तीय बाज़ारों में बड़े परिवर्तनों जैसे प्रतिभूतिकरण में वृद्धि, लीवरेज के प्रयोग में वृद्धि और संपर्क बैंकिंग की भूमिका में गिरावट के प्रभावों का निवारण किया जाना अविभावी हो गया है। संकट के ये पहलू यह प्रदर्शित करते हैं कि विनियमन जरूरी है और इसको सिद्ध करने की जिम्मेदारी सार्वजनिक नीति की है।

III. अन्तरराष्ट्रीय नीति समन्वयन

7.58 हाल के संकट से यह प्रमाणित हुआ है कि आघातों का सीमा पार प्रसारण गैर-परम्परागत मार्गों से भी हो सकता है। इसी प्रकार यह भी स्पष्ट हो गया है कि वित्तीय बाजारों की असफलता का सम्पदा क्षेत्र पर प्रतिकूल असर पड़ता है। परंतु राष्ट्रीय नीति निर्णयों में इन बाह्यताओं पर स्पष्ट रूप से विचार नहीं किया जाता। बृहत्तर वित्तीय भूभंडलीकरण को देखते हुए वित्तीय स्थिरता का कार्य एक अधिक परस्पर निर्भरता वाला कार्य बन जाता है, जिसमें वित्तीय प्रणालीगत भेद्यताओं को ठीक करने के उद्देश्य से प्रभावी समन्वित अन्तरराष्ट्रीय कार्रवाई आवश्यक हो जाती है। यह देखा गया है कि हालांकि राष्ट्रीय सरकारों और केंद्रीय बैंकों ने हर संभव नीतिगत विकल्प के द्वारा कार्रवाई की फिर भी वे सकारात्मक भावना को पुनर्निमित करने में असमर्थ रहे क्योंकि वित्तीय प्रणाली अन्तरसम्बद्ध थी और घरेलू नीतिगत कार्रवाईयों पर सीमा पार की सकारात्मक और नकारात्मक बाह्यताओं का प्रभाव पड़ा। सबसे महत्त्वूर्ण बात यह कि उन्होंने पाया कि भावनाएं और विश्वास विश्वभर में देशों के बीच बहुत महत्त्वपूर्ण ढंग से परस्पर सम्बद्ध हैं। अप्रैल 2009 में लंदन जी-20 जैसी घटनाओं ने यह प्रमाणित किया कि भूमंडलीकरण के युग में किसी वित्तीय संकट का वैश्विक सहयोग और वैश्विक कार्रवाई के बिना प्रबंध नहीं किया जा सकता। इस प्रकार संकट पर कार्रवाई का अन्तरराष्ट्रीय पहलू पहले के किसी भी समय की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है और यह महत्त्वपूर्ण है कि संकट के दौरान देशों में नीतियों का बेहतर समन्वयन हो। ऐसे समयों में नीतिगत समन्वयन, विशेषकर समष्टि-आर्थिक नीतियों पर देशों के आर-पार परामर्श और कुछ वित्तीय तथा मौद्रिक सहायता में सुसंगतता से बेहतर परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

7.59 वित्तीय संस्थाओं और बाजारों के अधिक वैश्विक बनते जाने के साथ नीति निर्माताओं और पर्यवेक्षकों दोनों ही रूपों में अन्तरराष्ट्रीय प्राधिकरणों के लिए वित्तीय दबावों की घटनाओं के साथ प्रभावी ढंग से निपटने के लिए अधिकाधिक सहकारी और समन्वित दृष्टिकोण आवश्यक हो गया है। हाल के संकट के दौरान हालांकि सीमा पार सहयोग का कुछ अंश देखा गया है, फिर भी यह परिपूर्ण या बहुत प्रभावी नहीं था। जमाराशि और बैंक देयताओं की अन्य प्रकार की गारंटियों के क्षेत्र में अन्तरराष्ट्रीय सहयोग विशेष रूप से कम था। अत: संकट से एक सबक यह मिला है कि नियंत्रक अंतरपणन से बचने की आवश्यकता है। यह तभी संभव है जब अंतरराष्ट्रीय नीति समन्वयन अधिक सुसंगत और प्रभावी हो। स्ट्रास-कान (2009 ए) ने कहा है कि जैसे ही संकट आरंभ हुआ देशों ने अंतिम ऋणदाता सुविधा के आधार को विस्तृत करने, ऋणदाताओं और जमाकर्ताओं के संरक्षण को बढ़ाने और सार्वजनिक निधियों से बैंकों के पुर्नपूंजीकरण के लिए असमन्वित रूप से कार्रवाई की। इस प्रकार इस समन्वयन के न होने से कुछ अस्थिरता पैदा करने वाले प्रभाव पड़े, कम के कम अल्पकालीन अवधि में ये प्रभाव पड़े थे। इस उद्देश्य के लिए सुझाव दिया गया है कि विवेकपूर्ण विनियमों के प्रमुख पहलुओं को सभी देशों में और सभी वित्तीय गतिविधियों में सुसंगत रूप से लागू किया जाना चाहिए। विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण यह है कि न केवल सीमा पार की संस्थाओं, बल्कि सीमा-पार के बाजारों के भी वित्तीय विनियमों और पर्यवेक्षण को सुदृढ़ बनाते हुए एक कम दुर्बल वैश्विक वित्तीय प्रणाली के लक्ष्य को प्राप्त किया जाये। जिन क्षेत्रों में वैश्विक स्तर पर एक बेहतर समन्वय-तंत्र की आवश्यकता है, उनमें (i) वित्तीय इकाइयों के लिए समाधान-उपकरणों में समन्वयन (ii) जमाकर्ता और निवेश संरक्षण में सुसंगतता और समन्वयन तथा (ii) स्पष्ट विधिक दायित्व और घरेलू व मेजबान देशों के बीच सूचनाओं में सहभागिता के अधिकार शामिल हैं।

7.60 अन्तरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय प्रणाली में सुधार पर गठित राष्ट्र संघ सामान्य सभा के अध्यक्ष के विशेषज्ञ आयोग की रिपोर्ट (सितम्बर 2009) में इस बात को चिह्नित किया गया है कि अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक नीति में समन्वयन के प्रयासों का जोर उन राष्ट्रों पर दबाव बनाने का रहा है, जिनका व्यवहार प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण नहीं है, जबकि उन देशों के बारे में कुछ नहीं किया गया है जिनकी नीतियों के प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण परिणाम हो सकते हैं। इसके अलावा यह

भी समझने की आवश्यकता है कि अन्तरराष्ट्रीय चलनिधि को उन थोड़े से देशों की मौद्रिक नीतियों पर क्रमश: कम निर्भर होते जाना है, जो आरक्षित मुद्राएं जारी करते हैं। विशेष रूप से विकसित देशों को अपनी नकारात्मक बाह्यताओं के परिणामों के बारे में सचेत होने की आवश्यकता है और विकासशील देशों को प्रमुख औद्योगिक देशों में हुई विनियंत्रक समष्टि-आर्थिक विफलताओं से सुरक्षित रखने के लिए एक ढाँचे की आवश्यकता है। इस संदर्भ में जी-20 कार्यदल II ने अन्तरराष्ट्रीय नीति समन्वयन के विभिन्न क्षेत्रों को रेखांकित किया है जिन पर अल्प से मध्यम अवधि के परिप्रेक्ष्य में ध्यान देने की आवश्यकता है।

7.61 बेहतर अन्तरराष्ट्रीय नीति समन्वयन के लिए अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संरचना में भूमंडलीकरण के प्रभाव से निपटने के लिए एक बेहतर व्यवस्था की आवश्यकता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय नियामक संस्थाओं की गतिविधियों और मानकों में एक अनुकूलता हो। राष्ट्रीय नीतियाँ अधिक प्रभावी हो सकती हैं यदि वे अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर समन्वित हों। अन्यथा समन्वय में विफलता से और अधिक वैश्विक असंतुलन पैदा हो सकता है तथा विनिमय दर में वृद्धि हो सकती है व आस्ति मूल्य अस्थिरता बढ़ सकती है, जिसके कारण वृद्धि के पुन: सामान्य होने की प्रक्रिया और अधिक मुश्किल बन सकती है। इसी प्रकार, अन्तरराष्ट्रीय नीति समन्वयन को कुछ देशों द्वारा संकट के प्रत्युत्तर में आरंभ किये गये संरक्षणतावादी उपायों को रोकने की आवश्यकता है क्योंकि इससे वैश्विक स्तर पर अर्थव्यवस्था के पुन:स्वस्थ होने की गति में अवरोध पैदा हो सकता है। वास्तव में संकट के बाद की अवधि में कुछ हस्तक्षेपों के संबंध में सीमा पार की विकृतियों को कम करने के लिए बहुपक्षीय समन्वयन और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है।

IV. अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की भूमिका

7.62 संकट ने वित्त, स्पर्धा और कंपनी अभिशासन को प्रभावित करने वाली न केवल राष्ट्रीय विनियमन प्रणालियों में, बल्कि वित्तीय और आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए निर्मित अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं और व्यवस्थाओं में मौजूद बुनियादी समस्याओं को भी उजागर कर दिया है। प्रथम, वैश्विक आर्थिक गतिविधियों और नीतियों की निगरानी, जिसे अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं द्वारा किया जाना था, अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था में निर्मित हो रहे जोखिमों के बारे में पर्याप्त रूप से निर्देशित चेतावनियाँ नहीं दे पायी। इस संकट ने वैश्विक वित्त स्थिरता के ढाँचे की विश्वसनीयता पर गंभीर सवाल खड़े कर दिये हैं (पटनायक 2009)। आईएमएफ (2009 जी) के अनुसार अलग-अलग जोखिमों के समग्र प्रभाव इसके दायरे के बाहर थे तथा समष्टि वित्तीय मुद्दों को अलग-अलग करके देखा गया था, तथा पिछले जमा स्टाकों और साथ ही प्रतिसूचनाओं की भी पर्याप्त खोज नहीं की गयी थी। दूसरे, जैसे-जैसे संकट गहराता गया और उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में फैलता गया, अन्तरराष्ट्रीय चलनिधि और समायोजन में सहयोग के लिए ऋणों की व्यवस्था भी उन अंतरालों को पर्याप्त रूप से नहीं भर पायी, जो बहुपक्षीय संस्थाओं के ऋण लिखतों की रूपरेखाओं और आकार में मौजूद कमियों को दर्शाता है। संकट की रोकथाम के लिए उचित और सामयिक कदमों को उठाने की उनकी अपर्याप्तता यह दर्शाती है कि इन संस्थाओं और उनके अभिशासन के अधिदेशों का मूल्यांकन करते हुए शीघ्र सुधार किये जाने की आवश्यकता है। तीसरे, इस बात को भी जाँचने की जरूरत है कि बहुत सी उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं वाले देशों में जो विशाल आरक्षित राशियाँ संचित हुईं क्या वे अंशत: इस कारण थीं कि अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) जैसी संस्थाओं में इनका भरोसा नहीं था। आईएमएफ के कार्यों में यह भी शामिल है कि वह वैश्विक आरक्षित राशियों के संचयन का संगठन बने। आईएमएफ को इस बात का आत्म-निरीक्षण करने की आवश्यकता है कि आरक्षित राशियों की निधियों का यह जमाव क्या इन देशों के, जो कि अतीत में दो दशकों तक संकट से प्रभावित रहे हैं, आईएमएफ के साथ व्यवहार करते हुए प्राप्त अनुभवों के कारण है।

7.63 इस तथ्य के बावजूद कि संकट के प्रारंभ होने के समय से आईएमएफ जैसी अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की भूमिका पर सवाल उठे हैं, इस कोष के सदस्यों के लिए एक स्पष्ट सबक यह है कि संकट पूर्व, आरंभिक संकट और वास्तविक संकट की स्थितियों के दौरान सदस्य सरकारों को संभावित वित्तपोषण कराने में विश्व बैंक जैसी अन्य संस्थाओं के साथ सहयोग करने की आईएमएफ की एक महत्त्वपूर्ण, सतत भूमिका है (इचेग्रीन 2009 बी, ट्रूमैन 2009)। उदाहरण के लिए 2008 के अंत में जीआए के अन्तर्गत आईएमएफ का बकाया ऋण 17.5 बिलियन एसडीआर था, जो 2009 के अंत में 37.2 बिलियन एसडीआर तक पहुँच गया (2010 में अब तक 46.8 बिलियन एसडीआर) और अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह कि सकल वायदा वचनबद्ध क्षमता 161.7 बिलियन अमरीकी डालर की थी। चूंकि आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था और वित्तीय प्रणाली में वित्तीय संकट अपरिहार्य है, यह आवश्यक है कि ऐसी संस्थाओं को पर्याप्त संसाधनों का सहयोग मिले ताकि जब आवश्यकता पड़े वे अपने सदस्यों की सहायता कर सकें। प्रतिकूल बाजार स्थितियों में उपयोग हेतु वित्तीय संसाधनों की

उपलब्धता को बढ़ाकर और बहुपक्षीय संस्थाओं द्वारा ऋण के रूप में अधिक लचीलापन लाकर निश्चय ही उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) की उस प्रवृति को सीमित करने में सहायता मिलेगी, जहाँ वे आत्म-सुरक्षा के रूप में अधिकारिक अन्तरराष्ट्रीय आरक्षित निधियों का विशाल जमाव करने लगती हैं। यह मानते हुए कि यह संकट याद दिलाया है कि किन्हीं खास परिस्थितियों में अंतिम उधारदाता के रूप में एक वैश्विक ऋणदाता की हमेशा आवश्यकता है, आईएमएफ के लिए सहयोग निर्मित करने की आवश्यकता पर जोर दिया गया है ताकि वह अपनी इस भूमिका को प्रभावी ढंग से अदा कर सके।

7.64 अनेक क्षेत्रों में यह अनुभव किया गया कि अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएं संकट को रोकने में विफल रही हैं और उसका पर्याप्त प्रत्युत्तर अभिकल्पित करने और उसे कार्यान्वित करने में उनकी धीमी गति की आलोचना की गयी। सितम्बर 2009 में पीट्सबर्ग के जी-20 शिखर सम्मेलन में उभरती वैश्विक आर्थिक व्यवथा में आईएमएफ की भूमिका पर व्यापक रूप से चर्चा की गयी। जी-20 के मंच से आईएमएफ की अधिशासन प्रक्रिया के आधुनिकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया गया, क्योंकि उसकी विश्वसनीयता, वैधानिकता और प्रभावोत्पादकता को सुधारने के लिए यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्व है। यह अनुभव किया गया कि आईएमएफ को एक कोटा-आधारित संगठन बने रहना चाहिए और कोटे के वितरण में उसके सदस्यों का विश्व व्यवस्था में संबंधित भार दिखाई पड़ना चाहिए जिसमें कि गतिशील उभरते हुए बाजारों और विकासशील देशों के विकास में सुदृढ़ वृद्धि को देखते हुए महत्त्वपूर्ण रूप से परिवर्तन हुआ है। इसलिए वित्तीय संकट वैश्विक अधिशासन के ढाँचों में बदलाव की आवश्यकता को रेखांकित करता है, जिसमें बहुपक्षीय वित्तीय और साथ ही अन्तरराष्ट्रीय मानक निर्माता निकायों में विकासशील देशों को अधिकाधिक शामिल करना भी शामिल है। इस संबंध में अधिशासन में सुधार का सबसे महत्त्वपूर्ण क्षेत्र यह है कि एक अर्थपूर्ण कोटा हो और प्रतिनिधित्व में संशोधन हो, जो कि आईएमएफ में प्रक्रियाधीन है और विश्व बैंक में पूरा हो चुका है।

7.65 अन्तरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय प्रणाली के सुधारों पर संयुक्त राष्ट्र सामान्य सभा के अध्यक्ष के विशेषज्ञ आयोग की रिपोर्ट (अध्यक्ष : जोसेफ ई स्टिग्लिट्ज) में, जो कि सितम्बर 2009 में जारी हुई है, अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं की बृहत्तर भूमिका पर जोर देते हुए यह सिफारिश की गयी है कि अन्तरराष्ट्रीय समुदाय को संकट से सबक लेते हुए यदि विश्व अर्थव्यवस्था के लिए सुदृढ़ सार्वजनिक नीतियाँ निर्मित करनी हैं तो उन्हें 'इतनी बड़ी कि फेल होने नहीं दिया जा सकता" वाली संस्थाओं के दीर्घकालीन परिणामों पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

7.66 यह प्रमाणित हो जाने पर कि ब्रिटेन वुड्स संस्थाएं संकट का सामना करने के लिए पूरी तरह से तैयार नही थीं, सबसे पहली प्राथमिकता यह सुनिश्चित करने में होनी चाहिए कि हाल के संकट को हल करने में सहायता देने में कोष के पास पर्याप्त संसाधन होने चाहिए ताकि वह अपनी भूमिका अदा कर सके। जनवरी 2009 में यह प्रस्ताव किया गया कि अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधनों को दुगना कर दिया जाये। जी-20 शिखर सम्मेलन और अन्तरराष्ट्रीय मौद्रिक और वित्तीय समिति ने अप्रैल 2009 में इस प्रस्ताव को समर्थन दिया और 250 बिलियन अमरीकी डालर की तुरन्त वृद्धि करने और तदनन्तर उधार लेने के लिए विस्तारित नयी व्यवस्थाओं (एनएबी) के माध्यम से आईएमएफ के संसाधनों को तिगुना कर देने के लिए सहमति प्रदान की । दूसरा मुद्दा प्रारक्षित संचित राशि के लिए वैकल्पिक सुविधा प्रदान करने की गुंजाइश से संबंधित है जो कि आईएमएफ संसाधनों को बढ़ाते हुए और लचीली उधार व्यवस्था के मार्फत एक बीमा प्रणाली के रूप में हो। यह उल्लेखनीय है कि आईएमएफ ने कोष के सदस्य देशों के विदेशी मुद्रा भंडारों में अनुपूरक राशि देते हुए वैश्विक मुद्रा प्रणाली में चलनिधि प्रदान करने के लिए अगस्त 2009 में एक सामान्य विशेष आहरण अधिकार (एसडीआर) का आबंटन किया जो कि लगभग 161 बिलियन एसडीआर (250 बिलियन अमरीकी डालर) के समतुल्य था। इसके अतिरिक्त आईएमएफ ने 9 सितम्बर 2009 को 21.5 बिलियन एसडीआर (लगभग 34 बिलियन अमरीकी डालर) का विशेष एसडीआर आबंटन किया।

7.67 वित्तीय संकट पर हाल की अधिकांश रिपोर्टों में संसाधनों के निर्गमों में पर्याप्तता के अलावा यह भी कहा गया है कि आईएमएफ जैसी बहुपक्षीय संस्थाओं को अपने अधिशासन और साथ ही निगरानी प्रणाली में सुधार लाने की आवश्यकता है। प्रथम दृष्ट्या यह एक प्रबल मामला दिखाई देता है कि समष्टि वित्तीय सहबद्धताओं का मौद्रिक नीति में बेहतर एकीकरण होना चाहिए और आईएमएफ जैसी संस्थाओं को इसे अपनी नियमित निगरानी प्रक्रिया में समाविष्ट करने की आवश्यकता है। कोष अपनी निगरानी प्रणालियों, अतिरिक्त देखरेख और तकनीकी सहायता के द्वारा शिथिल प्रक्रिया पर ध्यान देते हुए अनश्चितताओं और संभावित असंगतियों को घटने में एक महत्त्वपूर्ण भुमिका अदा कर सकता है। साथ ही, उनकी वैधानिकता और उत्तरदायित्व को बढ़ाने के लिए सुधार भी आवश्यक है। जी-20 रिपोर्ट में इस बात पर जोर दिया गया है कि सरकारों को उनकी आर्थिक नीतियों पर सलाह देने में आईएमएफ की प्रभावोत्पादकता को बढ़ाने,

उसकी अधिकार क्षमता को सुदृढ़ करने और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि संकट को टालने और प्रणालीगत कमजोरियों को न्यूनतम करने के लिए आवश्यक कदम उठाने की क्षमता उसके पास हो। इस संदर्भ में जी-20 कार्यदल III को यह जिम्मेदारी दी गयी कि वह आईएमएफ के सुधारों से संबंधित नेताओं के नवम्बर 2008 के घोषणापत्र में शामिल निर्णयों पर कार्रवाई को आगे बढ़ाये। उसने आईएमएफ में परिवर्तनों के तेज करने की त्वरित आवश्यकता पर बल दिया ताकि वह अपने अधिदेश को अधिक प्रभावशाली ढंग से पूरा कर सके। ऐसे परिवर्तन कोष की वैधता, स्वामित्व और कार्यकुशलता को ध्यान में रखते हुए संसाधनों, अधिशासन ढाँचे और ऋण लिखतों में यदि कुछ अन्तर्निहित खामियाँ हैं तो उन्हें दूर करने और कोष की भूमिकाओं और उत्तरदायित्वों को स्पष्ट करने वाले होने चाहिए। उसने कोष में सुधार के लिए त्वरित और प्रस्तावित मध्यम अवधि के कदमों से जुड़ी कार्य योजना की भी सिफारिश की। इसके अतिरिक्त, आईएमएफ और वित्तीय स्थिरता बोर्ड (एफएसबी) जैसी अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं के बीच इस प्रकार का सहयोग होना चाहिए कि उनकी अपनी-अपनी भूमिकाआंट और समन्वय प्रणालियों को लेकर किसी प्रकार की अस्पष्टता न रहे।

7.68 संकट से आईएमएफ के लिए मुख्य संदेश यह उभरा है कि नीतियों और बाजारों पर उसकी निगरानी को और अधिक सुदृढ़ होना चाहिए। उसकी निगरानी प्रणाली को जब कभी भी राष्ट्रीय और वैश्विक वित्तीय स्थिरता के संभावित खतरा नजर आये, स्पष्ट संकेत देने के प्रयास करने चाहिए। आइएमएफ (2009 जी) ने शुरुआती चेतावनी देने की प्रणाली के लिए एक संयुक्त कोष - वित्तीय स्थिरता मंच (एफएसएफ) की स्थापना का सुझाव दिया है (देखें अध्याय IV)। संक्षेप में, कोष को न केवल अपने संसाधनों की पर्याप्तता को बढ़ाना चाहिए, बल्कि संभावित संकट को अभिनिर्धारित करने और उसे रोकने की क्षमता भी विकसित करनी चाहिए और वास्तविक समय के आधार पर इस स्थिति से निपटने के लिए जो कुछ आवश्यक हो करना चाहिए। प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण देशों की अर्थव्यवस्थाओं या उनके वित्तीय क्षेत्रों में जब भी चिंताजनक स्थिति के लक्षण नज़र आये, कोष को उन्हें गोपनीय चेतावनियाँ जारी करने और जोखिमों से संबंधित एक अधिक खुली सम्प्रेषण व्यवस्था के लिए स्वयं को तैयार करना चाहिए।

V. वैश्विक असंतुलन और समष्टि-आर्थिक प्रबंधन

7.69 आवश्यक नहीं है कि वैश्विक समष्टि-आर्थिक असंतुलन प्रत्यक्ष रूप से इस संकट के कारक तत्व रहे हों, लेकिन वे निश्चय ही इस समस्या का एक अंग थे। विशाल असमानताएं, विशेषकर प्रमुख हितधारक अर्थव्यवस्थाओं में असामनताओं से वैश्विक स्तर घरेलू और विदेशी असंतुलन उत्पन्न हुए थे और हाल के संकट को पिछले असंतुलनों की निर्मिति के कारण एक अव्यवस्थित शिथिलता के रूप में देखा जा सकता है। वैश्विक असंतुलनों के बने रहने के कारण 2000 के दशक में अपेक्षाकृत विश्वव्यापी निम्न ब्याज दरें बनी रहीं जिसके निवेशकों ने उच्चतर प्रतिफल प्राप्त करने चाहे। दूसरी ओर, वित्तीय बाजारों में अपेक्षाकृत स्थिरता निधियों की निम्न लागत और सुदृढ़ आर्थिक वृद्धि को दर्शाती थी, जिससे जोखिम मूल्य महत्त्वपूर्णर्प रूप से कम था। नीति निर्माता उन बढ़ते हुए समष्टि-आर्थिक असंतुलनों पर विचार करने में विफल रहे, जिनसे वित्तीय व्यवस्था और आवासीय बाजारों में प्रणालीगत जोखिम निर्मित हुए थे। इस संदर्भ में रेड्डी (2000 ए) ने उल्लेख किया था कि "हम देख रहे हैं कि वैश्विक घटनाक्रमों से, विशेषकर वैश्विक वित्तीय बाजारों के घटनाक्रमों का उभरते हुए बाजारों की वित्तीय स्थितियों पर सर्वाधिक प्रत्यक्ष और गंभीर प्रभाव पड़ रहा है। वैश्विक असंतुलनों में किसी भी आकस्मिक और अव्यवस्थित समायोजन के गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकते हैं।" इन घटनाक्रमों को समझते हुए और वैश्विक असंतुलनों के परिणामों को रेखांकित करते हुए भारत के प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह का कथन था कि "एक ओर जहाँ चालू खाते की स्थितियों में असामंजस्य किसी हद तक अपेक्षित है - बल्कि वांछनीय है, वैश्विक अर्थव्यवस्था में विशाल असमानतओं से अस्थिरता और ऋण की दुलर्भता को लेकर चिंताएं उत्पन्न हुई हैं। असंतुलनों को दूर करने की प्रक्रिया यदि आकस्मिक और अनपेक्षित ढंग से होती है तो वह विघटनकारी हो सकती है। वैश्विक असंतुलनों का वर्तमान स्तर हमेशा के लिए बनाये नहीं रखा जा सकता। इसके लिए उन देशों को भी कार्रवाई करने की आवश्यकता है, जहाँ चालू खाते में अधिशेष है और उन देशों को भी जहाँ चालू खाते में घाटे की स्थिति है। एक आकस्मिक अधोगति को रोकने के लिए असंतुलनों को दूर करने की दिशा में समन्वित प्रयास आवश्यक हैं। अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं को इस संबंध में अतिरिक्त रूप से सक्रिय भूमिका अदा करने की आवश्यकता है।"

7.70 जी-20 शिखर सम्मेलन के एक वक्तव्य (नवम्बर 2008) में संकट में वैश्विक असंतुलनों की भूमिका को रेखांकित किया गया, "वर्तमान स्थिति के लिए जिम्मेदार महत्त्वपूर्ण कारक तत्वों में अन्य चीजों के साथ-साथ समष्टि-आर्थिक नीतियों का असंगत और अपर्याप्त समन्वय अपर्याप्त ढाँचागत सुधार भी हैं जिनके कारण ऐसे वैश्विक समष्टि-आर्थिक परिणाम प्राप्त हुए जो लंबे समय तक टिकाऊ नहीं थे।

इन सभी घटना-क्रमों ने अधिशेषों को जन्म दिया और अन्ततः उनकी परिणति कड़े बाजार व्यतिक्रमों में हुई।" स्माघी (2008) और डयुनवे (2009) का तर्क था कि बढ़ते हुए वैश्विक असंतुलनों के संबंध में यदि शुरूआत में नीतिगत उपाय किये गये होते तो संकट कम हानिकारक होता। संक्षेप में यह कि यदि बाह्य असंतुलनों की निर्मिति के लक्षणों को समुचित नीतिगत उपायों के साथ गंभीरता से लिया जाता तो हाल के संकट की प्रतिकूलता को कम करना संभव हो सकता था। इस प्रकार, वैश्विक असंतुलनों के साथ शुरूआती अवस्था में ही सक्रिय रूप से निपटना संकट पूर्व की अवधि में सर्वोत्तम नीतिगत प्रत्युत्तर होता।

7.71 संकट के साथ वैश्विक असंतुलनों से संबंधित चिंताएं समाप्त नहीं हुई हैं। जैसी कि आईएमएफ के वैश्विक आर्थिक दृष्टिकोण (अप्रैल 2009) में विशद चर्चा की गयी है, चालू खाते के घाटे का वित्तपोषण, विशेषकर अमेरिका में चालू खाते के घाटे का वित्तपोषण आने वाले वर्षों में समस्यापूर्ण हो सकता है। क्योंकि (i) बढ़ती हुई ऋण चिंताओं के कारण अमरीकी आस्तियों के आकर्षण में गिरावट, (ii) घरेलू तरफदारी में लंबे समय तक वृद्धि के बने रहने की संभावना और (iii) सीमा-पार के सकल पूंजी प्रवाहों में गिरावट इसके मूल में हो सकते हैं। इससे वैश्विक असंतुलनों के अन्ततः अव्यवस्थित रूप से शिथिल होने के लिए अधिक जोखिम आवश्यक होगा। ऐसे दृश्य से निपटने के लिए प्रमुख हितधारक देशों के नीति निर्माताओं को समष्टि-आर्थिक और संरचनागत नीतियों का उपयोग करने की आवश्यकता पड़ सकती है ताकि वे अपने-अपने अधिकार क्षेत्रों में बचत राशियों और निवेशों में पुनर्संतुलन ला सकें। उन्हें पूंजी प्रवाहों से उत्पन्न प्रणालीगत जोखिमों को घटाने के लिए विनियमों का भी उपयोग करना चाहिए। प्रमुख हितधारक देशों के बीच बहुपक्षीय परामर्श, जिन्हें हाल के वर्षों में आईएमएफ ने आरंभ किया है, जारी रहने चाहिए ताकि वैश्विक असंतुलनों में किसी अव्यवस्थित समायोजन को टाला जा सके। जब तक एक ऐसा समन्वित नीतिगत प्रत्युत्तर विकसित नहीं होता, जो वैश्विक मांग को समर्थन देता हो, वैश्विक असंतुलनों के और भी कठोर होते जाने की संभावना को रोका नहीं जा सकता। इस संदर्भ में राष्ट्र संघ की रिपोर्ट (2009) में तर्क दिया गया है कि जो देश निर्यात अर्जनों और वैश्विक वित्तीय प्रवाहों में भारी अस्थिरता के खतरे का सामना कर रहे हैं, उनके लिए यह उचित होगा कि वे अपनी एहतियाती बचत राशियों में वृद्धि करें ताकि वे संभावित भावी संकटों के विरुद्ध अपना बचाव सुनिश्चित कर सकें। एक ओर जहाँ यह अलग-अलग देशों के तर्कपूर्ण है कि वे विदेशी अधिशेषों और विदेशी आरक्षित राशियों को निर्मित करते हुए किसी दूसरे संकट के सम्मुख अपनी सुरक्षा के तंत्र को विकसित करें, यह सकल मांग को कमजोर ही करता है। अतः सुरक्षा प्रदान करने के लिए वैकल्पिक उपायों को विकसित करने की आवश्यकता है ताकि न केवल अधिशेष वाले देशों में सकल मांग सुदृढ़ हो सके, बल्कि क्रमिक रूप से वैश्विक अंसतुलनों को कम करते हुए दीर्घावधि में वैश्विक वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित किया जा सके।

VI. राजकोषीय नीति के लिए सबक

7.72 एक ओर जबकि कीन्स की नीतियों का युद्धोत्तर आर्थिक नीतियों पर जबर्दस्त प्रभाव था, 70 के दशक के तेल संकट के दौरान नीति निर्माताओं ने भारी मुद्रास्फीति और बेरोजगारी से निपटने में आपूर्ति आघात की तुलना में मुद्रास्फीति के लक्ष्य संधान को एक अधिक कारगर उपाय समझा। यह भी स्वीकार किया गया कि कीन्स की नीतियाँ अधिक से अधिक एक अल्पावधि उपाय हैं क्योंकि बहुत लंबे समय तक सरकारों का घाटे में रहने का परिणाम यह हो सकता है कि सकल मांग पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े। बावजूद इसके कि कीन्स की नीतियों की अल्पावधि या दीर्घावधि प्रभावोत्पादकता पर विशाल मंदी के दौर में खूब अकादमिक बहसें होती रहीं हैं, इन नीतियों ने हाल के संकट में नीतिनिर्माताओं की प्रतिक्रियाओं को महत्त्वपूर्ण रूप में प्रभावित किया है। भारी गिरावट की अवस्था में विभिन्न सरकारों को निजी क्षेत्र की देयताओं की भारी राशियों को अपने हाथ में लेना पड़ा और प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति को कार्यान्वित करना पड़ा (देखें अध्याय IV)।

7.73 इस संदर्भ में यह प्रासंगिक है कि 1990 के दशक के जापानी अनुभव से मिले इस महत्त्वपूर्ण सबक पर चर्चा की जाए कि कीन्स की नीति हमेशा कारगर नहीं होती। जापान ने हालांकि 1990 के दशक में विशाल राजकोषीय उत्प्रेरक पैकजों को आरंभ किया पर बैंकिंग क्षेत्र अपने अनर्जक ऋणों को निपटाने में असमर्थ था। भुगतान अनिश्चितता के परिणामस्वरूप आर्थिक संकुचन अनेक वर्षों तक बना रहा (कोबायाशी, 2008)। अतः यह महत्त्वपूर्ण है कि राजकोषीय नीति के साथ-साथ ऐसे नीतिगत उपाय भी किये जाएं जो बैंकिंग और वित्तीय प्रणाली को अधिक लचीला बनाते हों। विशाल मंदी और 1990 के दशक के जापान से आधारभूत सबक लेते हुए कोस्टेलो और अन्य (2009) ने भी इस पर जोर दिया है कि नीति निर्माताओं को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि वित्तीय क्षेत्र में सुधार हो और उसका पुनः पूंजीकरण किया जाये ताकि वह अपने अत्यावश्यक कार्य को निष्पादित करना पुनः आरंभ करे। तथापि, ऐसा प्रतीत होता है कि अल्पावधि वाले परिप्रेक्ष्य में कीन्स की नीतियाँ कारगर रहती हैं। ऐसा देखा गया है कि आस्ट्रेलिया जैसे देशों के, जिन्होंने अच्छी तरह से अभिकल्पित राजकोषीय उत्प्रेरक कार्यक्रम जल्दी आरंभ कर दिये थे, संकट से

तेजी से बाहर निकलने की संभावना है। यहाँ तक कि पूर्वी एशियाई संकट के बाद के समय में देखा गया कि कोरिया सरकार के राजकोषीय प्रत्युत्तर से, जिसमें वित्तीय और कारपोरेट क्षेत्र के तुलनपत्रों को सुधारने पर ध्यान दिया गया था, वहाँ अर्थव्यवस्था अन्य की तुलना में तेजी से सामान्य हुई। यह दिलचस्प है कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं जब भी संकट का सामना करती हैं तो उनके लिए इस तरह की रूढ़िवादी रणनीतियाँ बतायी जाती हैं कि वे पुन: विश्वास कायम करने के लिए करों में वृद्धि कर या सार्वजनिक व्यय को कम कर घाटे को कम करें। जबकि इसके विपरीत हाल के संकट में यह देखा गया है कि विश्वास की बहाली के लिए राजकोषीय संकुचन के उपाय करने के बजाय उन्नत और उभरती बाजार अर्थव्यवस्था, दोनों जगहों पर सरकारों को ऐसे विवेकाधीन राजकोषीय उपाय करने पड़े, जो सकल मांग को उत्पन्न करते हुए मंदी का सामना बेहतर तरीके से कर सके।

7.74 हाल के संकट के दौरान सक्रिय विवेकपूर्ण राजकोषीय नीति के अनुसरण ने देशों को अच्छे आर्थिक समय में अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाकर एक 'राजकोषीय भंडार' निर्मित करने का महत्त्व दर्शाया है। इस भंडार का वे 'सूखे' की अवधि में उपयोग कर सकते हैं। अनुभव यह दर्शाता है कि बहुत से देश, जिसमें अमेरिका और यूरो क्षेत्र के कई देश शामिल हैं, यह करने में विफल रहे थे। इसलिए वित्तीय संकट ने अचानक उन पर और भी अधिक राजकोषीय घाटों और ऋण अनुपातों का भार डाल दिया। विशेषकर यूरो क्षेत्र के देशों के पास राजकोषीय युक्तियों को करने की बहुत सीमित गुंजाइश बची थी और इसी तरह जब प्रति-चक्रीय कदमों को उठाने की बहुत अधिक आवश्यकता थी, तब उनके लिए गुंजाइश बहुत कम बची थी। यूनानी ऋण संकट की हाल की घटना ने अधिक विवेकपूर्ण राजकोषीय नीति की आवश्यकता को स्पष्ट रूप से दर्शाया है। यह महत्त्वपूर्ण है कि देश अपने राजकोषीय घाटे को एक ऐसे स्तर तक सीमित रखें जो उनके ऋण चुकौती दायित्वों को पूरा करने की क्षमता के अनुरूप हो।

7.75 आईएमएफ (2009 सी) के अनुसार संकट से राजकोषीय नीति के लिए दो महत्त्वपूर्ण सबक सामने आये हैं। पहला, जो देश तेजी की अवधि के दौरान अपने राजकोषीय घाटों को सीमित नहीं रखा सके, उन्हें सीमित राजकोषीय गुंजाइश के चलते प्रति-चक्रीय राजकोषीय कदमों को उठाने में कठिनाई हुई। दूसरा मामला करारोपण की संरचना से संबंधित है। ज्यादातर देशों में कर प्रणाली का झुकाव ब्याज भुगतानों की कटौती क्षमता के मार्फत कर्ज वित्तपोषण की ओर रहा है। भारी वृद्धियों की ओर इस झुकाव से आघातों के प्रति निजी क्षेत्र की भेद्यता बढ़ जाती है। अत: अच्छे समय में राजकोषीय प्रतिरोधक स्थापित किये जाने चाहिए और एक नियम-आधारित ढाँचे से इस सिद्धान्त को लागू किया जा सकता है, विशेषकर इसलिए कि आस्ति मूल्य वृद्धियाँ अस्थायी रूप से कर राजस्वों को बढ़ावा देकर मूल में एक अल्प सुगठित राजकोषीय स्थिति को ढक सकती है। इसी प्रकार कर नीति ने भी हाल के वर्षों में ऋण वित्तपोषण को प्रोत्साहित किया है। यह पाया गया है कि कर में विकृति से अधिक लीवरेज की स्थिति उत्पन्न होती है। ऐसे कर नियमों को उपयोगी ढंग से बदला जा सकता है। संक्षेप में यह कि संकट ने इस बात की आवश्यकता को रेखांकित किया है कि तेजी के समय में राजकोषीय नीति को एक सुदृढ़ आधार दिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्टार्क (2009) के अनुसार सितम्बर 2008 से सरकारी बांडों के अर्जन में कीमत-लागत अंतर में आये बदलावों ने दर्शाया है कि अनिश्चित समय में वित्तीय बाजार देशों के बीच उनकी ऋण पात्रता के आधार पर, जिसमें उनकी राजकोषीय मूल स्थितियाँ शामिल हैं, अधिकाधिक विभेद करते हैं। इसलिए जब तक देश अपने आर्थिक चक्र के उठान के समय राजकोषीय सुदृढ़ीकरण प्रक्रिया आरंभ नहीं करते, गिरावट के समय उनके द्वारा लिया गया कोई भी अतिरिक्त राजकोषीय कदम न केवल राजकोषीय पोषणीयता के मामले को ओर अधिक गंभीर बनायेगा, बल्कि सीमा-पार के वित्तीय बाजारों में बाजार प्रतिस्पर्धियों के व्यवहारों को भी प्रभावित करेगा। जैसा कि ऊपर कहा गया है यूनान में सरकारी शोधक्षमता और नकदी की स्थिति को लेकर चिंताएं और वित्तीय बाजार की स्थितियों पर उनके प्रभाव इस बारे में पर्याप्त प्रमाण प्रदान करते हैं।

VII. साख-श्रेणी-निर्धारण एजेंसियों की भूमिका

7.76 संकट का एक विश्लेषण इस बात को प्रमाणित करता है कि साख-श्रेणी निर्धारण एजेंसियाँ बिगड़ती हुई वित्तीय बाजार स्थितियों का पता लगाने और समय पर श्रेणी निर्धारण के अपने कार्य में असफल रहीं। वे साख बाजार के नये जोखिमों, अर्थात सुनियोजित साख उत्पादों (व्युत्पन्नियों) और बचाव निधियों के अनुरूप भी स्वयं को नहीं ढाल पायीं। इसलिए संकट के उभरने के साथ साख-श्रेणी निर्धारण करने वाली एजेंसियों की भूमिका पर, जो कि जटिल व्युत्पन्न उत्पादों को अभिकल्पित करने और साथ ही ऐसे उत्पादों को साख-श्रेणी प्रदान करने के कार्य में लगी रही थीं, सवाल उठे हैं। इस प्रकार हितों के टकराव का मामला स्पष्ट रूप से विचारणीय है, जिसके लिए उचित विनियमन व पर्यवेक्षण और साख-श्रेणी निर्धारण करने वाली एजेंसियों की भूमिका का पुनरीक्षण आवश्यक है। आरंभ में, प्रतिभूति आयोगों के अन्तरराष्ट्रीय संगठन (आईओएससीओ) ने मई 2009 में साख-श्रेणी निर्धारण करने वाली एजेंसियों के लिए एक संशोधित आचरण - संहिता जारी की है। यूनान के संकट की सबसे ताजी घटना में साख-

श्रेणी निर्धारण करने वाली एजेंसियों का मूल्यांकन पर एक बार फिर बहस के योग्य हो गया है। ऐसा समझा जा रहा है कि साख-श्रेणी निर्धारण एजेंसियों ने यूनान की सही राजकोषीय स्थिति को निर्धारित करने में लंबा समय लिया।

7.77 नियंत्रक नीतिगत कार्रवाइयों को साख-श्रेणी निर्धारक एजेंसियों के हितों के टकराव को कम करने और निवेशकों, विशेषकर बड़ी संस्थाओं के निवेशकों की समुचित सावधानी के लिए स्वयं को सन्नद्ध करना होगा। इसे जिन उत्पादों के संबंध में वे निर्धारण करती हैं उनके बारे में उनके विनियोजित परामर्श पर प्रतिबंध लगाकर और श्रेणी निर्धारण की प्रणालियों के और अधिक पारदर्शी प्रकटीकरण के द्वारा किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, यह पाया गया है कि उन्हीं श्रेणी निर्धारक संस्थाओं से दीर्घ सूत्री संबंधों के चलते जो विश्लेषक साख श्रेणी अनुमोदन के प्रभारी होते हैं, उनकी स्वतंत्रता प्रभावित होती है। अत: यूरोपीय संघ में साख श्रेणी निर्धारक एजेंसियों के लिए नये कानून में अभिकल्पित है कि विश्लेषक और साख श्रेणी निर्धारण को अनुमोदित करने वाले व्यक्ति एक आवर्ती व्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करेंगे। इसके अलावा, उत्तरोत्तर यह अनुभव किया गया है कि साख-श्रेणी निर्धारण एजेंसियों पर नियंत्रण होना चाहिए और वे मात्र लाभ अर्जित करने वाली संस्थाओं के रूप में ही न हों। साख-श्रेणी निर्धारक संस्थाओं के कामकाज में सामाजिक उत्तरदायित्व के किसी अंश को भी जोड़ने की आवश्यकता है।

VIII. वित्तीय और संपदा क्षेत्रों के आकार में संतुलन

7.78 इस बात को दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि उद्यमियों और निवेशकों के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करने के लिए एक अच्छी तरह से विकसित वित्तीय क्षेत्र आवश्यक है। एक कुशल वित्तीय क्षेत्र वस्तुओं और सेवाओं की लागत तथा उत्पादन और व्यापार के जोखिम को घटाता है और इस प्रकार जीवन निर्वाह के स्तर को उठाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। तथापि, हाल के संकट ने यह दर्शाया है कि वित्तीय क्षेत्र ने व्यावहारिक अर्थजगत की वित्तीय आवश्यकताओं से बिना निकट संबंध बनाये प्रकट तौर पर एक अर्ध - स्वायत्त अस्तित्व ग्रहण कर लिया था। पूर्व के वर्षों में वित्तीय उद्योग अनुपात से अधिक बड़ा हो गया था जो विशेष रूप से उन्नत वित्तीय प्रणालियों में तीव्र गति से हुए साख निर्माण, आस्ति मूल्य बुलबले और ऋणग्रस्तता के उच्च स्तरों में दिखाई पड़ता है। वैश्विक वित्तीय क्षेत्र में असंगत वृद्धि मुख्यतया प्रतिलाभों के लिए एक आक्रामक तलाश के कारण थी, जो कि वैश्विक प्रणाली में आसान नकदी के कारण उत्पन्न हुई थी और इसने भारी संख्या में वित्तीय नवाचारों को जन्म दिया था। सुनियोजन और बचाव व्यवस्था के द्वारा जटिल वित्तीय उत्पाद निर्मित हुए, जो इस विश्वास के तहत निर्मित और वितरित हुए थे कि महज वित्तीय आभियंत्रिकी के द्वारा वास्तविक मूल्य पैदा किया जा सकता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, बढ़ते हुए और अधिकाधिक जटिल होते जाते वित्तीय क्षेत्र के कारण पूंजी निर्माण में वृद्धि का शायद ही कोई लक्षण नजर आ रहा था। इस संदर्भ में टर्नर (2010) का तर्क है कि "मात्र 12 वर्षों के भीतर दो भीषण आकस्मिक गिरावटों के बाद अब हमें इस महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर विचार करना है कि वित्तीय गतिविधियों की यह बढ़ती हुई मात्रा क्या सचमुच लाभदायक रही है, कौन से तत्व लाभकारी रहे हैं और कौन से हानिकारक, तथा बढ़े हुए वित्तीय उदारीकरण और परिष्कार से मिले किन्हीं लाभों और उन अनिश्चितताओं के बीच जो कि कई बार उन्हीं के साथ सम्बद्ध प्रतीत होती हैं, सार्वजनिक नीति में कौन से समझौताकारी समन्वयों की आवश्यकता है। और इस बात का कोई बाध्यकारी प्रमाण भी दिखाई नहीं देता कि विकसित देशों में पिछले 30 वर्षों में बढ़े हुए वित्तीय नवाचार का उत्पादन की वृद्धि पर कोई लाभकारी प्रभाव पड़ा है।"

7.79 संक्षेप में, वैश्विक अर्थव्यवस्था में, विशेषकर अमेरिका में बल्कि अन्य देशों की अर्थव्यवस्था में अतिशय चलनिधि के व्याप्त हो जाने से अतिशय 'वित्तीयकरण' हुआ है। अन्य वस्तुओं और सेवाओं के क्षेत्र की तुलना में वित्तीय क्षेत्र में अधिक तेजी से वृद्धि हुई है। इससे एक प्रकार से वित्त की वृद्धि अपने आप में एक लक्ष्य बन गयी और वह खाद्यान्न, ईंधन, स्वास्थ्य और शिक्षा जैसी मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने का एक साधन नहीं रही है। यह जानते हुए कि संगठित वित्तीय क्षेत्र में अतिशय वृद्धि का वास्तविक क्षेत्र पर एक विनाशकारी प्रभाव पड़ा है, यह महत्त्वपूर्ण हो गया है कि (i) वृद्धि और विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप वित्तीय क्षेत्र के अधिकतम आकार की जाँच की जाए और (ii) वास्तविक क्षेत्र की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वित्तीय क्षेत्र के नवाचारों को अधिक अर्थपूर्ण बनाया जाये।

IX. भारत सहित उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए सबक

7.80 उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के लिए सबक मोटे तौर पर स्पष्ट हैं। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, उन्हें निगरानी और नियंत्रण व्यवस्था को सुदृढ़ बनाना है और अपने वित्तीय बाजारों में एजेंसी से

जुड़ी समस्याओं को दूर करना है। जब वृद्धि की गति बढ़ती है, उन्हें बजट घाटे और कर्ज के बढ़े हुए स्तरों को दूर करना होता है। इस तथ्य के बावजूद कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं का प्रभाव अपेक्षाकृत क्षीण रहा है, उनके लिए जो नीतिगत सबक हैं, उन्हें लेकर कुछ अस्पष्टता है। उदाहरण के लिए क्या उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को वैश्विक व्यापार और वित्त के साथ जुड़ाव की अपनी शर्तों में संशोधन करना चाहिए? इसी प्रकार क्या उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में अपनायी गयी व्यवहार पद्धतियों को, जिन्हें कि एक समय अन्तरराष्ट्रीय स्तरों को स्थापित करने में आदर्श नमूना माना जाता था, उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं द्वारा व्यापक दिशा निर्देशों के रूप में अपनाने की प्रक्रिया को हमेशा जारी रखना चाहिए? संक्षेप में, मुद्दा यह है कि वह हर चीज जो उन्नत बाजारों के उपयुक्त मानी जाती है, क्या वह उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी हमेशा उसी तरह उपयुक्त है। इसके अलावा, हाल के घटना-क्रमों ने उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को एक अवसर दिया है कि वे अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय रचना के सुधारों को प्रभावित करें। इस प्रकार, उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वे जिन विशिष्ट परिवर्तनों को लाना चाहती है, उनकी जाँच कर लें।

7.81 पिछले खंडों में जिन मुद्दों को रेखांकित किया गया है, वे उन्नत अर्थव्यवस्थाओं पर तुरंत लागू होते हैं, इसके बावजूद उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी उनकी मोटे तौर पर प्रासंगिता है। इसमें संदेह नहीं कि हाल के संकट के दौरान नियंत्रण और निगरानी से संबंधित जो मुद्दे उभरकर आये हैं, वे उभरते बाजारों और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के लिए, जो कि अभी भी अधिक परिष्कृत और उन्नत वित्तीय व्यवस्था को प्राप्त करने की प्रक्रिया में हैं, एक ठोस पृष्ठभूमि प्रदान करते हैं। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि हाल के संकट के दौरान वित्तीय क्षेत्र के विनियमन और निगरानी के बारे में जो भी सबक मिला है उससे प्रणालियों का ढाँचा तैयार करने में मागदर्शन मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में बहुत सारे मुद्दों की समीक्षा करने की आवश्यकता है, हालांकि इन अर्थव्यवस्थाओं के कारण यह संकट पैदा नहीं हुआ था। इस पृष्ठभूमि में आगे के खंडों में उन महत्त्वपूर्ण सबकों को रेखांकित किया गया है जो कि भारत सहित सभी उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए मोटे तौर पर इस संकट से प्राप्त किये जा सकते हैं।

असंबद्धता संबंधी अवधारणा का निरस्तीकरण

7.82 उन्नत औद्योगिक अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में 2002 के बाद के समय में अधिकांश प्रमुख बाजार अर्थव्यवस्थाओं ने निरन्तर उल्लेखनीय वृद्धि निष्पादन दर्शाया है। इससे एक नयी समझ बनी है कि उभरते बाजार स्वयं अपनी नियति के मालिक हैं और औद्योगिक देशों के कारोबार-चक्रों से 'असम्बद्ध' हैं। वास्तव में उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं वैश्विक वित्तीय बाजारों के अधिकेद्र की हलचल के प्रथम दौर के प्रभावों से अधिकांशत: अछूते रहीं। तथापि, जैसे-जैसे उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में संकट गहराता गया वित्तीय और वास्तविक अर्थव्यवस्थाओं के बीच जटिल और बहुस्तरीय अन्तर्क्रिया का प्रभाव उभरती अर्थव्यवस्थाओं पर पड़ने लगा। संकट जब दूसरे चरण में पहुँचा तो सम्पदा पर भी प्रभाव दिखाई देने लगा। अत: असम्बद्धता का अनुमान एक भ्रम साबित हुआ क्योंकि जिन देशों का वित्तीय क्षेत्र "विषाक्त आस्तियों" से सम्बद्ध नहीं था या मामूली सा जुड़ा हुआ था, इन पर भी प्रभाव पड़ा था (अध्याय 6 भी देखें)।

7.83 वर्तमान वैश्विक वित्तीय हलचल की तीव्रता और विस्तार और परिणामस्वरूप समग्र रूप से आर्थिक संकट बहुत व्यापक था और इसका चाहे वे उन्नत अर्थव्यवस्था हों या उभरती अर्थव्यवस्था, सभी पर प्रभाव पड़ा। यह संकट जो अमरीका जैसे देश में- जहाँ की वित्तीय प्रणाली सर्वाधिक परिष्कृत है, आवास बंधक बाजार में बकाया ऋणों के साथ शुरू हुआ था और इसने वित्त, विदेश व्यापार और विश्वास के मार्गों से एक आश्चर्यजनक तेजी के साथ सारे विश्व को अपनी चपेट में ले लिया। विश्व का लगभग हर देश विभिन्न कारणों से इस संकट से प्रभावित हुआ, फिर उसकी सघनता चाहे कम या ज्यादा रही हो। एशियाई संकट के बाद के समय में अपने विदेशी क्षेत्र का प्रबंध करने में सतर्कतापूर्ण रवैये के बावजूद निर्यात-उन्मुख एशिया को निर्यातों की मांग में तेजी से कमी आने के कारण आर्थिक वृद्धि में अचानक गिरावट का सामना करना पड़ा। इसी प्रकार व्यापक स्तर पर पूंजी आयात करने वाला पूर्वी यूरोप भी बैंकिंग सरणियों के मार्फत नकदी प्रवाह के उलट जाने से प्रभावित हुआ जबकि अफ्रीकी और दक्षिण अमरीकी अर्थव्यवस्थाएं वस्तुओं के मूल्य में आयी गिरावट और उनकी व्यापार शर्तों के बिगड़ने से प्रभावित हुए (सुब्बाराव 2009)। इसलिए समष्टि-आर्थिक आधारभूत तत्वों और वित्तीय क्षेत्र के स्वास्थ्य के स्तर पर कोई विभेद नहीं था। जिन उभरती अर्थव्यवस्थाओं ने 1990 के दशक के वित्तीय संकट के अनुभव के आधार पर घरेलू वित्तीय संस्थाओं को मजबूत बनाया था और भारी मात्रा में फोरेक्स संचयन किया था वे भी नहीं बच सकीं। भारत जैसा देश अपनी मजबूत बैंकिंग व्यवस्था और सुचारू रूप से कार्य कर रही वित्तीय प्रणाली के बावजूद मुख्यतया विश्वास मार्ग के मार्फत वैश्विक वितरण प्रक्रिया और चलनिधि में गत्यावरोध के चलते नकदी प्रवाह के आकस्मिक

उलट जाने से उत्पन्न वित्तीय संकट के छितराये हुए प्रभावों की चपेट में आया। धीरे-धीरे संपदा क्षेत्र निर्यातों में आयी कमी से प्रभावित हो गया, सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र और बीपीओ कंपनियों में नौकरियाँ समाप्त हो गयीं और साथ ही स्थावर संपदा, मोटर वाहन और उपभोक्ता सामग्री क्षेत्र मांग कमी से प्रभावित हुए क्योंकि अनेक बैंकों द्वारा सर्तकतामूलक दृष्टिकोण के कारण इन क्षेत्रों में ऋण संकुचन हो गया था।

7.84 जब वित्तीय संकट आरंभ हुआ था तो यह समझा गया था कि विकासशील देश आम तौर पर प्रभावित नहीं होंगे क्योंकि (i) उन्होंने हाल के वर्षों में घरेलू बैंकिंग और वित्तीय प्रणाली को सुदृढ़ करने के लिए विभिन्न सुधारात्मक कदम उठाये थे और (ii) उनका वित्तीय क्षेत्र वैश्विक वित्तीय प्रणाली से पूरी तरह एकीकृत नहीं हुआ था। तथापि, भारी पूंजी आहरणों के कारण, विशेषकर लेहमान की घटना के बाद की अवधि में घरेलू इक्विटी बाजारों पर समय समय पर आघातपूर्ण झटके दिखाई देने लगे थे। इसके आशय संबंधित विदेशी मुद्रा बाजारों में विघटनों और बढ़ते हुए जोखिमों बोध से जुड़े हैं, जिनसे ऋण संकुचन हुए। तथापि, दूसरी लहर सम्पदा क्षेत्र से, विशेषकर घटती हुई निर्यात मांगों और संबंधित नौकरियों के समाप्त होने के रूप में आयी और क्रमश: यह एक चुनौती बन गयी। हालांकि निकट अतीत में फोरेक्स आरक्षित निधियों के निर्मिति और घरेलू वित्तीय संस्थाआंट की मजबूती के साथ साथ वित्तीय प्रोत्साहनों की विशाल मात्रा और समंजनकारी मौद्रिक नीति ने उभरती अर्थव्यवस्थाओं को वैश्विक वित्तीय संकट से उत्पन्न चुनौतियों का सामना करने की एक बेहतर स्थिति प्रदान की थी फिर भी संकट के संक्रामक प्रभावों से बचना कठिन था।

7.85 संक्षेप में भारत सहित उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए इस संकट से मिला सबक मोटे तौर पर यह है कि बढ़ते हुए वैश्विक व्यापार वित्त और श्रम के कारण वे अब उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के साथ पहले के किसी भी समय की तुलना में कहीं अधिक मजबूती के साथ एकीकृत हैं। परिणामस्वरूप वैश्विक अर्थव्यवस्था या वित्तीय प्रणाली में किसी प्रमुख देश या देशों के समूह को प्रभावित करने वाला कोई भी संकट उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं पर भी देर सबेर अपना असर डालेगा जो संकट की प्रकृति और विस्तार पर निर्भर करेगा। अत:, नीति निर्माताओं को अपनी नीतियाँ बनाते समय ऐसे संभावित वैश्विक आघातों से निपटने की पूर्व-तैयारी करने की आवश्यकता है।

वृद्धि के अधिक स्थायी स्रोत के रूप में घरेलू मांग

7.86 उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की विदेशी मांग पर संकट का प्रभाव स्पष्ट रूप से 2008 की अंतिम तिमाही से दिखाई देता रहा है। इसका पहला उदाहरण अमेरिका और यूरोप से और बाद में जापान से मांग में गिरावट के रूप में दिखाई दिया जो कि इन उभरते बाजार अर्थव्यवस्था वाले देशों के निर्यातों की नितान्त विपरीत स्थिति थी। बाद में, उन अन्य उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के निर्यात में गिरावट आयी जिनका निर्यात कच्चे माल और मध्यवर्ती सामान का था और जो उन बड़े उभरती बाजार देशों को, विशेषकर चीन को निर्यात किया जाता था जो निरन्तर जटिल होती आपूर्ति श्रृंखलाओं में तैयार माल के प्रमुख आपूर्तिकर्ता बन गये हैं। उभरती अर्थव्यवस्थाओं का वृद्धि संबंधी कार्य - निष्पादन इस बात को प्रमाणित करता है कि जो अर्थव्यवस्थाएं अपने आर्थिक विकास के लिए अधिकांशत: विदेशी मांग, अर्थात, निर्यातों पर निर्भर हैं वे बुरी तरह से प्रभावित हुई थीं। 2009 की पहली तिमाही में निर्यातों में आयीं गिरावट बड़ी उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के मामले में आयी लगभग 25 प्रतिशत की गिरावट (वर्ष-दर-वर्ष) के समकालिक थी। कुछ पण्य निर्यातक देशों, विशेषकर चीन और रूस में 2009 की पहल तिमाही में निर्यात में 40 प्रतिशत से अधिक की गिरावट आयी। विश्व वृद्धि दर के मंद हो जाने से चूंकि कीमतों में गिरावट आयी, उसके उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की आय में भी गिरावट आयी और इसके कारण मांग और वृद्धि घट गयी। इसके विपरीत जिन अर्थव्यवस्थाओं में जहाँ घरेलू मांग का सकल घरेलू उत्पाद के एक बड़ा स्रोत के रूप में वर्चस्व था, वहाँ यह प्रभाव हल्का था। इस प्रकार, यह निष्कर्ष निकालना तर्कधसंगत है कि निर्यात उन्मुख वृद्धि की रणनीति के बारे में पहले जो समझा गया था, वे उससे कहीं अधिक जोखिम भरी होती हैं। ऐसा सिर्फ इसलिए नहीं है कि वैश्विक मांग अस्थिर है, बल्कि इसलिए भी कि चक्र के संबंध में व्यापार अधिक लचीला प्रतीत होता है और गिरावट के समय यह अधिक संवेदनशील रहता है। यह स्पष्ट है कि घरेलू मांग वृद्धि का एक अधिक टिकाऊ स्रोत है। इस बात को समझते हुए कि संकट का असर घरेलू मांग पर पड़ता है, उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को विदेशी मांग पर अपनी अनुचित निर्भरता की स्थिति की समीक्षा करनी चाहिए और अपनी अर्थव्यवस्थाओं के भीतर ही घरेलू मांग को उत्पन्न करने के प्रयास करने चाहिए। सारांश यह कि कुछ प्रमुख उभरते हुए और विकासशील देशों की उनके द्वारा अपनायी गयी वृद्धि रणनीतियों की पुन: जाँच करनी चाहिए। इस बात को अब अधिकाधिक अनुभव किया जा रहा है कि उन्हें अब अपनी वृद्धि संबंधी रणनीतियों का

व्यापारिक कारोबार अधिशेष से हटाकर उसका घरेलू मांग के लिए उत्पादन की ओर पुनर्विन्यास करना चाहिए और औद्योगिक देशों के बजाय अन्य उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के बीच संतुलित व्यापार के अपेक्षाकृत अधिक विस्तार की ओर जाना चाहिए।

7.87 भारतीय संदर्भ में यह प्रतीत होता है कि एक तर्कसंगत संतुलित समष्टि-आर्थिक प्रबंधन की वजह से देश में बाहरी आघातों का सामना करने में अधिक लचीलापन है। भारत के अतिशय चालू खाता अधिशेष या घाटे नहीं हैं; न ही निर्यातों या विदेशी मांग पर अत्याधिक निर्भरता है; न निवेश या उपभोक्ता व्यय पर अतिशय निर्भरता है; और न ही अधिकांश घरेलू या कारपोरेट या वित्तीय मध्यवर्तियों में अतिशय लीवरेज है। इस प्रकार इस बात को रेखांकित करना उचित है कि संकट के व्यापक प्रभाव के बावजूद भारत 2008-09 के दौरान 6.7 प्रतिशत और 2009-10 के दौरान 7.4 प्रतिशत की वृद्धि करने में समर्थ था।

वित्तीय क्षेत्र के सुधार

7.88 किसी देश की वृद्धि और विकास में वित्तीय प्रणाली के विभिन्न घटकों के विकास की भूमिका निर्विवाद है। उभरती बाजार और विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में बचत राशियों को प्रभावी ढंग से जुटाना और उनका अभिनियोजन वित्तीय विकास के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। उभरती बाजार व्यवस्थाएं, जो कि अभी भी वित्तीय प्रणालियों के विकास की प्रक्रिया से गुजर रही हैं, इस संकट को सही सबक सीखने का एक अवसर मानकर सुदृढ़ प्रणाली निरीक्षण ढाँचे के साथ एक मजबूत वित्तीय क्षेत्र के विकास के लिए प्रयत्न कर सकती हैं।

7.89 हाल के संकट का अनुभव यह दर्शाता है कि अधिकांश उभरते हुए एशियाई देशों की वित्तीय प्रणाली में वैश्विक आघातों को झेलने का लचीलापन था क्योंकि पूर्वी एशियाई संकट के बाद जो सुधार आरंभ किये गये थे, उन्होंने पारदर्शिता और अभिशासन को बढ़ावा दिया था और विनियमों और निरीक्षण को सुदृढ़ बनाया था। इससे शोधक्षमता, चलनिधि और लाभप्रदता की दृष्टि से इस पूरे क्षेत्र में अधिक स्वस्थ वित्तीय संस्थाएं विकसित हुईं। वास्तव में कुछ का तर्क है कि भारत सहित अधिकांश उभरती एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में वित्तीय क्षेत्र के सुधारों के प्रति एक सतर्क और नया-तुला दृष्टिकोण हाल के वैश्विक संकट में एक वरदान साबित हुआ है। इसके बावजूद उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को यह सुनिश्चित करने के लिए कि उनके अपने देशों को भीतर प्रणालीगत जोखिमों की निगरानी हो रही है, अपनी समुचित सावधानी बरतने की आवश्यकता है। तथापि, संकट से यह मुद्दा भी उभरा है कि बहुराष्ट्रीय निगरानी की कठिनाइयों को देखते हुए क्या घरेलू देश अब उसी तरह बैंकों के विदेशी परिचालनों की अनुमति देते रहेंगे। दूसरे शब्दों में, यह देखा जाना है कि क्या देश अपने वित्तीय क्षेत्र को खोलने में अब अधिक संरक्षणवादी होंगे।

7.90 उदारीकरण और नियंत्रण के बीच अधिकतम संतुलन को सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए सुब्बाराव (2009 सी) का तर्क है कि "एक ओर जहाँ उदारीकरण वृद्धि प्रक्रिया के लिए महत्त्वपूर्ण है, वहीं इसका प्रबंध इस प्रकार से होना चाहिए कि अस्थिरता की शक्तियों को टाला जा सके। संकट का एक कारण यह था कि प्रणाली के भीतर अतिशय चलनिधि थी और उसके परिणामस्वरूप लाभ अर्जन के लिए खोज थी जो इस अवधारणा पर आधारित थी कि वित्तीय अभियांत्रिकी के द्वारा वास्तवित मूल्य को बढ़ाया जा सकता है। इसकी वजह से प्रणाली के भीतर असंतुलन और अतिरेक उत्पन्न हुए जिस पर विनियमन ने ध्यान नहीं दिया। तथापि, संकट का सबक यह नहीं कहता कि अत्याधिक विनियमन किया जाये क्योंकि उससे वृद्धि की अन्त:प्रेरणा का दमन होगा और रूढ़िवादी नीतियाँ मंहगी साबित हो सकती हैं। इसलिए यह वांछनीय होगा कि विनियमन की लागतों और लाभों के बीच एक संतुलन बनाये रखा जाये।" भारत में वित्तीय उदारीकरण के प्रयासों की रचना करते समय एक विवेकपूर्ण रवैया बहुत प्रभावी साबित हुआ है जो कि पुनर्पूंजीकरण के द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का सुदृढ़ीकरण करने; ऐसे वित्तीय `नवाचारों' को रोकने, जो कि जोखिमों को वास्तव में घटाने के बजाय उनका रूप बदलते थे, घरेलू बैंकों को उस ऋण जोखिम के प्रति नियंत्रण में रखने जो कि अब विश्व स्तर पर विषाक्त आस्ति के रूप में देखा जा रहा है; स्थावर सम्पदा में वित्तीय निवेशकों की अतिशय तेजी को नियंत्रित करने; प्रणालीगत महत्त्वपूर्ण गैर-बैंक वित्तीय संस्थाओं की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने; भुगतान शेष के पूंजी खाते के उदारीकरण के लिए जल्दबाजी और संभावित रूप से जोखिम भरे प्रयासों के विरुद्ध चेतावनी देने में दिखाई पड़ता है। इन सब प्रयासों के कारण भारत की स्थिति अच्छी रही। वह वैश्विक तेजी के दौरान न केवल अति उत्साही प्रतिक्रियाओं को रोक सका, बल्कि वैश्विक मंदी के नकारात्मक प्रभाव को भी कम कर सका। इस प्रकार देशों को भावी संकट से अपनी सुरक्षा स्वयं करनी होगी और इसके लिए उन्हें सर्वोत्तम तरीके से एक ऐसे सुदृढ़ आर्थिक और वित्तीय नीतिगत ढाँचे को लागू करना होगा, जो उनकी दुर्बलताओं को न्यूनतम करने में सहायक हो। तथापि, इसका अर्थ यह भी नहीं कि अतिशय विनियमन हो क्योंकि इसकी कीमत

बहुत अधिक चुकानी पड़ सकती है। सारांश में यह कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को वित्तीय क्षेत्र के विनियमन और उदारीकरण के बीच एक सही संतुलन सुनिश्चित करना होगा ताकि उनकी दीर्घकालीन वृद्धि संभावनाएं प्रभावित न हों।

7.91 भारतीय वित्तीय व्यवस्था के संदर्भ में यह देखना महत्त्वपूर्ण है कि वैश्विक वित्तीय संकट के संसर्ग के कारण इस पर कोई महत्त्वपूर्ण दबाव दिखाई नहीं दिया, हालांकि, वास्तविक अर्थव्यवस्था में अन्यत्र देखी गयी प्रवृत्तियों से जुड़ी गतिविधियों में एक मंदी दिखाई पड़ी थी। बैंकों की सकल ऋण वृद्धि, क्षेत्रवार ऋण वृद्धि तथा वृद्धिशील ऋण-जमाराशि अनुपात ऐतिहासिक रूप से समष्टि नीतिगत ढाँचे के अनिवार्य घटक रहे हैं। संकट के बहुत पहले ही ये परिवर्तनशील घटक बैंकों के विवेकपूर्ण नियंत्रक ढाँचे में समन्वित कर दिये गये थे। रिज़र्व बैंक द्वारा अपनाये गये समष्टि विवेकपूर्ण और व्यष्टि विवेकपूर्ण नीतियों ने बैंकिंग प्रणाली की वित्तीय स्थिरता और लचीलेपन को सुनिश्चित किया है। उच्च वृद्धि की अवधि में आरंभ किये गये सामयिक विवेकपूर्ण कदमों ने, विशेषकर प्रतिभूतिकरण, अतिरिक्त जोखिम भारिताओं और विशिष्ट क्षेत्रों के लिए प्रावधानों से उधार ली जाने वाली निधियों पर निर्भरता और प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों (एनबीएफसी) की लीवरेजिंग को सीमित रखने की युक्तियों से हमारी स्थिति अच्छी रही है। आरक्षित नकदी निधि अनुपात (सीआरआर) और सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) के मार्फत आरक्षित निधि आवश्यकताओं ने स्वाभाविक बफरों के रूप में काम किया है और अत्याधिक लीवरेज को रोका है। महत्त्वपूर्ण अन्तर यह था कि भारतीय दृष्टिकोण में क्षेत्र - विशिष्ट नुस्खों को प्रयोग में लाया गया था जबकि दूसरों ने ऐसा नहीं किया था। विदेशी बैंकों की अपेक्षाकृत कम संख्या में उपस्थिति ने भी घरेलू अर्थव्यवस्था पर प्रभाव को सीमित रखा। इस प्रकार समुचित विनियमाक ढाँचे के इस्तेमाल और साथ ही समय समय पर किये गये विशिष्ट विवेकपूर्ण उपायों ने भी भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान अस्थिरता को रोकने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

पूंजी प्रवाहों का प्रबंधन

7.92 उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में अतीत में अनेक संकटों की एक मुख्य वजह भारी मात्रा में पूंजी के आगमन को माना गया है। यह स्पष्ट है कि संकट उभरती अर्थव्यवस्थाओं से आरंभ हुआ हो या उन्नत अर्थव्यवस्थाओं से, उभरती अर्थव्यवस्थाओं से पूंजी का प्रवाह सामान्यतया पलट जाता है। हाल के संकट के संदर्भ में यह उललेखनीय है कि भारी पूंजी आगमनों और चलनिधि की प्रचुरता के प्रत्युत्तर में बैंकों में अपने हामीदारी स्तरों में शिथिलता लाने की प्रवृति आयी जिसकी वजह से आस्ति मूल्य में अवास्तविक उछाल आया। हालांकि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में पूंजी के प्रवाह में 1980 के दशक के आरंभ से ही भारी अस्थिरता भी देखी गयी है, जो उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में मौद्रिक नीति के रूख पर अधिकाधिक निर्भर होने लगी है और यह एक ऐसा कारक है जिस पर घरेलू प्राधिकारियों का कोई नियंत्रण नहीं है। वित्तीय आवश्यकता से कहीं अधिक के भारी पूंजी आगमनों के दौर के बाद सहसा वह दौर आता है जब पूंजी आगमन बंद हो जाता है। वास्तव में इस तरह का एक सुदृढ़ दृष्टिकोण है कि हाल के संकट के दौरान पूंजी आगमन का सहसा बंद होना अधिकतर अन्तरराष्ट्रीय पूंजी बाजारों की असफलताओं और कमियों के कारण था, न कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के सुदृढ़ नीतिगत ढाँचे में कमी की वजह से। बहुत अल्प अवधि के भीतर पूंजी के आगमन में इस तरह के बड़े उतार-चढ़ावों की वजह से उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को लागतों और बड़े उत्पादन के बीच समायोजन की भारी लागत और रोजगार समाप्ति को झेलना पड़ता है। हाल के संकट ने उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में पूंजी के भारी आगमनों के संभावित खतरों को एक बार फिर से रेखांकित किया है। साथ ही, यह भी दिखाई देता है कि पूंजी खाते का प्रबंध और वित्तीय क्षेत्र का विवेकपूर्ण विनियमन साथ-साथ चलते हैं। यह स्पष्ट है कि भारत जैसी उभरती बाजार अर्थव्यवस्था, जिसने कि एक नपातुला और अच्छी तरह से चरणबद्ध दृष्टिकोण अपनाया था, इन बहिर्जन्य आघातों के प्रतिकूल प्रभाव को न्यूनतम रख सकी। यह दृष्टिकोण पूर्वी यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं जैसे उन देशों से भिन्न था जहाँ घरेलू बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के मार्फत विदेशी पूंजी आगमनों की मध्यस्थता को सीमित करने के लिए विवेकपूर्ण नियंत्रक उपाय नहीं किये गये थे। इसे देखते हुए अन्तरराष्ट्रीय मंचों पर विभिन्न स्तरों पर पूंजी नियंत्रण को लागू करने के मुद्दे पर चर्चाएं हो रही हैं।

7.93 पूंजी आगमन के प्रबंधन के मुद्दे पर ब्रेटन वुड्स इंस्टीट्यूशन्स भी प्रतीत होता है कि अपने पूर्ववर्ती दृष्टिकोण से कुछ हटी है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रबंध निदेशक डोमनिक स्ट्रास कान (2009 बी) की टिप्पणी है कि "निकास संबंधी वर्तमान रणनीतियों से सम्बद्ध चुनौती उभरते बाजारों में होने वाले पूंजी आगमनों का प्रबंधन है ..... देशों के पास जो साधन है, उनमें इसके लिए अनेक नीतिगत विकल्प हैं। कई देशों में मूल्य वृद्धि को एक प्रमुख नीतिगत प्रत्युत्तर के रूप में रखा जाना चाहिए। अन्य उपकरणों में निम्न ब्याज दरें, प्ररक्षित राशियों का संचयन, कड़ी राजकोषीय नीति और वित्तीय क्षेत्र में विवेकपूर्ण

कदम शामिल हैं। पूंजी पर नियंत्रण विभिन्न उपायों का एक हिस्सा हो सकता है। हमारा दृष्टिकोण पूरी तरह खुला हुआ है। लेकिन हमें यह जानना चाहिए कि सभी उपकरणों की अपनी अपनी सीमाएं हैं। हमें व्यावहारिक होना चाहिए।" वास्तव में ऑस्ट्री और अन्य (2010) का तर्क है कि जहाँ पर सरकारें निवेश में ऐसे प्रवाह का सामना कर रही हैं, जिससे उनकी अर्थव्यवस्थाओं के अस्थिर हो जाने का खतरा पैदा हो गया हो, ऐसे मामलों में पूंजी नियंत्रण `जायज' उपकरण हैं।

7.94 बचत और निवेश को आगे बढ़ाने के लिए समष्टि और संरचनागत दोनों नीतियों के उपयोग की सिफारिश करते हुए अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2009 बी) ने विशाल असंतुलनों और भारी पूंजी प्रवाहों के प्रत्युत्तर में पहले से लिए जाने वाले नीतिगत उपायों की सामयिकता और प्रकृति को पुन: जाँचने की अपील की है। विश्व बैंक (2009) के अनुसार, "संकट के प्रभावों को रोकने या उन्हें कम करने के लिए संभव है कि अंतिम उपाय के रूप में पूंजीगत प्रतिबंध को टाला नहीं जा सकता हो ..... किसी वित्तीय संकट को कम करने और समष्टि-आर्थिक परिवर्तनों में स्थिरता लाने के लिए पूंजीगत नियंत्रणों को एक अंतिम उपाय के रूप में लागू करने की आवश्यकता पड़ सकती है।" निज़थावोर्न (2009) ने सिफारिश की कि पूंजी के भारी प्रवाहों से जुड़े आस्ति मूल्य में अवास्तविक तीव्रता के जोखिम को देखते हुए बैंकों के जोखिम प्रबंधन को सुदृढ़ बनाना जारी रखना चाहिए और नियंत्रण प्राधिकारियों को ऐसे जोखिम घटाने के लिए आवश्यक समष्टि विवेकपूर्ण उपायों को सक्रियता के साथ लागू करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि चलनिधि की प्रचुरता जैसी भी हो, साख स्तरों और बैंक पूंजी नियमों को सतर्क रहना चाहिए। कर्ज प्रवाहों के उदारीकरण में अधिक सर्तकता पर जोर देते हुए मोहन और कपूर (2010) का तर्क है कि अन्य क्षेत्रों में पूरक सुधार के साथ-साथ पूंजी खाता खोलने ओर उसके सक्रिय प्रबंध में एक नपा-तुला और बेहतर चरणबद्ध दृष्टिकोण होना चाहिए। सुब्रमणियन और विलियमसन (2009 बी) का कथन है कि अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी संस्थाओं को यह जानना चाहिए कि पूंजी आगमनों से समष्टि-आर्थिक स्तर पर गंभीर चुनौतियाँ पैदा हो सकती हैं जिनके लिए एक अलग चक्रिय प्रत्युत्तर की आवश्यकता पड़ सकती है। उभरते हुए बाजारों के लिए भावी संकटों के सम्मुख नीतिगत शॉगार में ऐसे उपाय होने चाहिए जो साख वृद्धि और लीवरेज, विशेषकर पूंजी प्रवाहों को प्रतिचक्रीय उपयों से सामना कर सकें।

7.95 पूंजी प्रवाहों से संबंधित उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं का हाल का अनुभव विवेकपूर्ण उपायों की संभावित भूमिका की ओर संकेत करता है ताकि पूंजी के भारी आगमनों से जुड़े प्रणालीगत जोखिम को कम किया जा सके, उदाहरण के लिए घरेलू संस्थाओं और उनके उधारकर्ताओं के विदेशी मुद्रा लेनदेन को नियंत्रित करने जैसे कदम। हाल के समय में पूंजी प्रवाहों में अस्थिरता को देखते हुए अब यह व्यापक तौर पर समझा जा रहा है कि अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय लेन देनों पर एक कर आरंभ करने की संभावनाओं का पता लगाया जा सकता है। वास्तव में भूतपूर्व अमरीकी फेडरल प्रमुख पॉल वॉल्कर और लॉर्ड टर्नर (यूके फाइनेंशियल सर्विसेस ऑथरिटी के प्रमुख) जैसे वित्तीय के क्षेत्र के प्रतिष्ठित व्यक्तियों का सुझाव है कि ऐसा कर घरेलू वित्तीय लेन-देनों पर भी होना चाहिए। भारतीय संदर्भ में रेड्डी (2009) का सुझाव है कि सुझाव पर फॉरेक्स बाजार के संदर्भ में विचार किया जा सकता है और प्रतिभूति लेन देन कर प्रणाली को उपयुक्त रूप से संशोधित किया जा सकता है तथा इसे सहभागिता लिखतों तक बढ़ाया जा सकता है, हालांकि उनका व्यापार विदेश में होता है। इसी प्रकार कर अंतरपणन और आवास की भी विश्व स्तर पर पुनरीक्षा हो रही है। वास्तव में 20 अक्तूबर 2009 को ब्राजील ने घोषणा की कि वह देश में इक्विटी और नियत आय लिखतों में निवेश के लिए देश में आने वाली पूंजी पर 2 प्रतिशत का कर लागू करेगा, जबकि उत्पादक अर्थव्यवस्था में प्रत्यक्ष निवेश इस निर्णय से अप्रभावित रहेगा। संक्षेप में, पूंजीगत नियंत्रण की पुनरीक्षा और चर्चा हो रही है क्योंकि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए यह मुद्दा संकट से एक महत्त्वपूर्ण सबक के रूप में उभरा है।

7.96 अत: निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि संकट के पूर्व अनुभव के कारण उभरते एशियाई और लातीनी अमरीकी देशों ने प्रतीत होता है कि अपने चालू खातों और विदेशी वित्त आवश्यकताओं का प्रबंध अधिक सावधानी के साथ किया है। इसके विपरीत, मध्य और पूर्वी यूरोप विदेशी मुद्रा पर अत्यधिक निर्भरता के कारण बुरी तरह से प्रभावित हुए क्योंकि विदेशी निवेशक लौट गये और पूंजी प्रवाह सूख गया। इस प्रकार, हाल का अनुभव पूंजी खाता उदारीकरण की गति और व्याप्ति के बारे में एक सतर्कतापूर्ण रवैये का सुझाव देता है, क्योंकि पूंजी खाते के उदारीकरण, घरेलू वित्त क्षेत्र के सुधार और मौद्रिक व विनिमय दर नीति के ढाँचे के बीच मजबूत सूत्रबद्धता है।

उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में बैंकिंग क्षेत्र का निधीयन

7.97 संकट से यह स्पष्ट है कि बैंकों ने - चाहे वे विदेशी हों या घरेलू - संकट को उत्पन्न करने या उसके प्रसार में एक महत्त्वपूर्ण

भूमिका निभायी थी। अन्तरराष्ट्रीय निपटान बैंक (बीआईएस) (2009 बी) के अनुसार प्रमुख विदेशी बैंकों की दुर्बलता और व्यय में कटौती करने की उनकी आवश्यकता एक कारक तत्व था। इसके विपरीत घरेलू जमाराशियों की निधि पर आधारित स्थानीय बैंकों की उपस्थिति ने जोखिम का विशाखन करने और विदेशी आघात को झेलने की दिशा में बैंकिंग व्यवसथाओं में अधिक लचीलापन लाने में सहायता दी। "यह पाया गया कि जो बैंक थोक निधि पर अत्यधिक निर्भर थे उनमें बाजार चलनिधि के किसी आघात के प्रति भेद्यता अधिक थी। संस्थाओं की थोक निधि बाजारों पर अतिशय निर्भरता प्रणालीगत चिन्ता का एक मुद्दा है और इस बारे में सतर्क दृष्टिकोण की आवश्यकता है। जब ऋण जमाराशियों की तुलना में ज्यादा बड़े होते हैं तो बैंक इस अंतराल के वित्तपोषण के लिए विदेशी स्रोतों या घरेलू और अन्तरराष्ट्रीय थोक बाजारों का सहारा लेते हैं। अत: यह आश्चर्य का विषय नहीं कि हंगरी, रोमानिया और उक्रेन जैसी पूर्वी यूरोपीय उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में, जहाँ दबाव अधिक था, जमाराशियों की तुलना में ऋण का अनुपात भी अपेक्षाकृत अधिक था। इसी प्रकार, यह देखा गया है कि विदेशी बैंकों की उपस्थिति मुद्रा में असंतुलनों से जुड़ी हुई थी। उदाहरण के लिए मध्य ओर पूर्वी यूरोप में विदेशी बैंकों ने स्थानीय मुद्रा में आय वाले प्रतिष्ठानों और परिवारों को यूरो और स्विस फ्रांक की प्रधानता वाले कारपोरेट, आवास और कार ऋण प्रदान किये जिसके परिणामास्वरूप जब घरेलू मुद्राओं में मूल्यह्रास हुआ तो उनसे कारपोरेट और पारिवारिक वित्तीय संकट और बढ़ गया। इससे संकेत मिलता है कि उभरते बाजार जब विदेशी बैंकों को बढ़ावा दें तो उसी समय उनके स्थानीय उधार देने की गतिविधियों का कड़ाई से नियंत्रण करें।"

उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में स्थानीय बांड बाजार के विकास की आवश्यकता

7.98 हाल के संकट में बैंकिंग क्षेत्र मध्यस्थता से जुड़े मुद्दों से उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में स्थानीय बांड बाजारों को और अधिक विकसित करने की आवश्यकता भी उज़ागर हुई है। चूंकि वित्तीय संकट के कारण उभरते बाजारों में उधारकर्ताओं की विदेश से निधि प्राप्त करने की क्षमता घट जाती है, इसलिए निधियाँ जुटाने के लिए उन्हें घरेलू बाजारों की ओर लौटना होता है। 1990 के दशक के संकट के बाद से स्थानीय मुद्रा वाले बांड बाजारों में अतिशय वृद्धि हुई है। इस बात पर जोर दिया गया है कि विस्तृत होते स्थानीय मुद्रा बांड बाजार अब उभरती अर्थव्यवस्थाओं के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता होने चाहिए। बांड बाजार बैंक मध्यस्थता का विकल्प प्रदान करते हैं। इचेनग्रीन (2009 सी) के अनुसार यह प्रमाणित हो चुका है कि जिन देशों में अधिक विकसित बांड बाजार थे, उन्होंने संकट के समय कम नकारात्मक प्रभावों को अनुभव किया क्योंकि विशेषत: बड़े प्रतिष्ठान वित्त के गैर-बैंक स्रोतों तक अपनी पहुँच बनाये रख सके। ऐसे प्रतिष्ठान अधिक लंबी अवधि वाले अपने परिचालनों का वित्त पोषण कर सके थे और इस प्रकार वे स्थितियों के बिगड़ने पर बाजार की ओर लौटने की आवश्यकता को टाल सके। यह स्पष्ट है कि अनेक उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में स्थानीय मुद्रा बांड बाजार निधियों का एक वैकल्पिक स्रोत बन रहे हैं। इन बाजारों की तेजी से वृद्धि हुई है। वे 2003 में 2.2 लाख करोड़ अमरीकी डालर से दुगना होकर 2008 के अंत में 5.5 लाख करोड़ अमरीकी डालर के हो चुके हैं। वास्तव में 1990 के दशक के संकट से सबक लेते हुए उभरते बाजारों की सरकारों ने स्थानीय मुद्रा बांड बाजारों को विकसित करने के प्रयत्न किये हैं ताकि उन वित्तीय संकटों, विशेषकर 1997 के एशियाई वित्त संकट की पुनरावृत्ति से बचा सके। पूर्वी एशियाई देश बांड बाजार के विकास में अग्रणी रहे हैं (डेला एंड हेस, 2009)। ये बाजार उभरते बाजारों वाली सरकारों और निगमों को जो कि वैश्विक वित्तीय संकट के दौरान अन्तरराष्ट्रीय वित्तीय बाजारों से बाहर कर दिये गये थे, वित्त प्रदान करने और बैंकिंग क्षेत्र पर उनकी निर्भरता को कम करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं।

7.99 घटे हुए मुद्रा असामंजस्यों के कारण अधिकांश लातीनी अमरीकी और एशियाई अर्थव्यवस्थाएं वास्तव में संकट के दौरान वस्तुत: सुदृढ़ होकर उभरीं। ब्राश (2009) के अनुसार स्थानीय मुद्रा बांड बाजार कुछ उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं और विकासशील देशों में एक 'अतिरिक्त पहिये' की तरह कार्य करते रहते हैं। अनेक उभरते बाजारों में मुद्रा और परिपक्वता के असमांजस्यों को सुधारने में सहायता देकर स्थानीय मुद्रा बांड बाजारों ने वित्तीय स्थिरता लाने में अपना योगदान दिया है। हालांकि उभरती बजार अर्थव्यवस्थाओं में कारपोरेट बांड बाजारों को विकसित करने में प्रगति हुई है फिर भी आकार, बाजार अधिक प्रतिफल वक्र रेखा के अभाव, लेखा संबंधी जानकारी के समुचित प्रकटीकरण में कठिनाइयों और कंपनी अधिशासन में कमजोरियाँ जैसे तमाम मुद्दे हैं। अत: जो देश अभी घरेलू बांड बाजार के विकास की शुरूआती अवस्था में हैं, उन्हें प्राथमिक बाजार की बाजार संरचना को निर्मित करने पर और जो देश कारपोरेट बांड बाजार विकास के अग्रिम चरण में हैं उन्हें कुशलता आधारित सुधारों की आवश्यकता पर ध्यान देना है। स्थानीय बाजारों के विकास के साथ देश की सीमा के भीतर ही उधार लेने और देने का कार्य बढ़

सकता है और इससे संभवत: बाहर जाने की आवश्यकता भी कम होगी। इसलिए यह तर्क दिया जा रहा है कि स्थानीय मुद्रा बांड बाजारों को अधिक विस्तृत करने से उस संभाव्यता को कम किया जा सकता है जब मुद्रा मूल्यांस एक पूर्ण रूपेण वित्तीय संकट में रूपान्तरित हो जाता है।

प्रति-चक्रीय राजकोषीय नीति ढाँचे की आवश्यकता

7.100 वित्तीय संकट का एक परिणाम यह रहा है कि वित्तीय जोखिम राजकोषीय प्राधिकारियों को हस्तांतरित हुए हैं, जिसके चलते राजकोषीय प्रोत्साहनों का वित्तपोषण करने का दायित्व उन पर आ गया है। तथापि, यह देखा जाना अभी शेष है कि विभिन्न उन्नत और उभरती अर्थव्यवस्थाओं ने जिन राजकोषीय प्रोत्साहन पैकेजों को आरंभ किया है, वे मांग को एक अल्पावधि समर्थन देने से परे किस हद तक अपना प्रभाव छोड़ते हैं और दीर्घकालीन संभावित वृद्धि के लिए एक सकारात्मक असर पैदा करते हैं। इसके अतिरिक्त, विस्तारवादी राजकोषीय ने अनेक देशो में इस बात के लिए चिंताएं पैदा की हैं कि वे निजी क्षेत्र में निवेश को घटाती हैं और सार्वजनिक क्षेत्र के वित्त को बनाये रखने के लिए चुनौती पैदा करती हैं। इसके कारण स्थिति जो अभी-अभी सामान्य होनी आरंभ हुई है, उस पर असर पड़ सकता है। इसके अलावा, इस संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि इससे वृद्धि को रोके रखने वाले कर्ज के स्तरों के बढ़ने और ब्याज दरों में वृद्धि का एक दुष्चक्र मध्यवधि के भीतर पैदा होगा। इस प्रकार, कुछ देशों के सामने अपने वित्तीय क्षेत्र की स्थिरता और आकस्मिक देयताओं पर ध्यान देने वाले मध्यावधि के राजकोषीय सुदृढ़ीकरण कार्यक्रमों को अभिकल्पित और घोषित करने की चुनौती आ सकती है।

7.101 यह देखा गया है कि अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं में राजकोषीय घाटे के स्तरों में वृद्धि हुई है क्योंकि नीतिनिर्माताओं ने सकल मांग में आयी कमी की जवाबी कार्रवाई की है और अपनी वित्तीय व्यवस्थाओं को पुन:सुचारु बनाना चाहा है। उदाहरण के लिए, उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में राजकोषीय प्राधिकारियें ने संकट का प्रत्युत्तर केंद्रीय बैंक के कार्यक्रमों को समर्थन देने के लिए पूंजी देते हुए, अनकदी परिसम्पत्तियों को खरीदा (उदाहरण के लिए अमेरिका में) और प्रतिभूतियों की उत्पत्ति को प्रोत्साहित करने के लिए गारंटियों के प्रावधान किये गये (जैसा कि इग्लैंड में हुआ)। संकट के दौरान आक्रामक मौद्रिक नीति को आसान बनाने के साथ साथ ऐसे उपायों से निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों के लिए उधारों की लागत वृद्धि को काबू में रखने में सहायता मिली। वास्तव में अधिकांश परिपक्व बाजार अर्थव्यवस्थाएं उभरते बाजारों के केंद्रीय बैंकों, तेल निर्यातकों और सरकारी सम्पदा कोषों से विदेशी बचत राशियाँ प्राप्त कर घरेलू बाजार दरों को सीमित रख सकी हैं। परिणामस्वरूप आम तौर पर इसकी अपेक्षा की जा रही है कि प्रमुख उन्नत और साथ ही उभरती अर्थव्यवस्थाएं भारी सार्वजनिक घाटों और तेजी से बढ़ते कर्ज के इस संकट से उबर आयेंगी। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2009 ई) के एक अनुमान के अनुसार उन्नत जी-20 देशों का औसत राजकोषीय घाटे के 2009 में सकल राष्ट्रीय उत्पाद का लगभग 10 प्रतिशत और 2010 में लगभग 8.5 प्रतिशत रहने की संभावना है। यदि विदेशी निवेश इन देशों में दीर्घकालिक राजकोषीय स्थिति के बने रहने के बारे में सोचते हैं तो सरकारी प्रतिभूतियों पर ब्याज दरों को में वृद्धि के समायोजन और विनिमय दर को घटाने की जरूरत होगी। हाल में यूनान की घटना के बाद इस मान्यता पर प्रश्न उठे हैं कि कोई बिना किसी सीमा के कैसे उधार ले सकता है। यह इस बात की ओर ध्यान दिलाता है कि राजकोषीय गुंजाइश का जरूरत से ज्यादा विस्तार नहीं किया जा सकता।

7.102 वित्तीय संकट के प्रभाव के अनुकूलन के लिए उभरती अर्थव्यवस्थाओं को विशाल राजकोषीय प्रोत्साहन उपायों का भी समर्थन मिला है। जो उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं इस संकट के दायरे में अधिक नीतिगत गुंजाइश और अल्प बाध्यकारी वित्तीय दबावों के साथ आयीं वे राजकोषीय ओर मौद्रिक नीति के साथ अधिक आक्रामक ढंग से अपना प्रत्युत्तर देने में समर्थ थीं। जिन उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं ने ज्यादा बड़े राजकोषीय प्रोत्साहन दिये और जिनका संकट से पूर्व एक सुदृढ़ आधार था और तेजी से विकसित होते व्यापार साझेदार थे, उनमें बहाली की प्रक्रिया भी तेज थी (आईएमएफ 2010 बी) वास्तव में औसत जी-20 देश की तुलना में एशिया का राजकोषीय प्रत्युत्तर (सकल राष्ट्रीय उत्पाद की दृष्टि से) अधिक बड़ा रहा है (काटो, 2009)। संकट पर हुए शोधकार्य से एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह भी निकला है कि जो देश प्रति-चक्रीय नीतियों को चलाने में समर्थ थे, वे इस संकट का सामना बेहतर तरीके से कर सके। तथापि, अनेक उभरते और विकासशील देशों के पास वैश्विक आर्थिक संकट से निपटने की 'नीतिगत' और 'राजकोषीय' गुंजाइश नहीं थी। परिणामस्वरूप, वैश्विक आर्थिक नीतियों में विशाल असंतुलन था। केवालो (2009) के अनुसार "प्रति-चक्रीय नीतियों का संचालन करने का अवसर उन भाग्यशाली अर्थव्यवस्थाओं ने अर्जित किया, जो पूर्व में जब स्थितियाँ अनुकूल थीं तो उन्हीं से संतुष्ट होकर नहीं रह गयी थीं और जिन्होंने विषम समय के लिए अपने को तैयार कर रखा था।" यह देखा गया है कि जिन देशों ने अच्छे समय के दौरान प्रति-चक्रीय नीतियों के लिए राजकोषीय गुंजाइश निर्मित नहीं की थी उनके पास

संकट के समय आत्मनिर्भर नीतिगत कार्रवाइयों के लिए कोई स्थान नहीं बचा था। इस प्रकार इस संकट यह मुद्दा उभरा है कि वे तेजी के दौर में अपनी राजकोषीय सुधारात्मक उपायों को और भी मजबूत बनायें और सुदृढ़ीकरण प्रक्रिया को तेज करें ताकि वे गिरावट या मंदी के दौर में प्रभावी प्रति-चक्रीय राजकोषीय उपायों को करने के लिए राजकोषीय गुंजाइश निर्मित कर सकें। उभरते और विकासशील देशों के लिए एक टिकाऊ आधार पर राजकोषीय और नीतिगत गुंजाइश का फिर से निर्धारण सुधारात्मक कार्यक्रम की एक केंद्रीय विशेषता बनना चाहिए। यूरोप के कुछ हिस्सों में हाल की घटनाओं से यह अब और अधिक स्पष्ट है।

उभरती बाजार अर्थव्यव्स्थाओं में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था की आवश्यकता

7.103 यद्यपि, चीन और भारत जैसी प्रमुख उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं हाल के संकट से हल्के प्रभावित हुई हैं, यह समझा जा रहा है कि कई दूसरे विकासशील देशों में गरीबी कम करने के कार्यक्रमों की गति प्रभावित होगी। निस्संदेह, ये देश पहले खाद्य पदार्थों और तेल उत्पादों की बढ़ती कीमतों से प्रभावित हुए थे और उसके बाद के हाल के संकट से, और ये वैश्विक मांग को बढ़ाने और वैश्विक स्थिति के प्रकृतिस्थ होने की प्रक्रिया को सहयोग देने में अपनी भूमिका अदा कर सकते थे, लेकिन उन्हें अभी अनेक वर्षों तक वित्त की आवश्यकता होगी। इन देशों में संभावित मांग को देखते हुए इन देशों के नीति निर्माताओं को सामाजिक सुरक्षा के ढाँचे को स्थापित करने और उसे मजबूत बनाने के लिए उपाय करने की आवश्यकता है। यह उल्लेखनीय है कि विश्व में कुछ सबसे अच्छे सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम समष्टि-आर्थिक दबावों के दौरान ही उभरे हैं। उदाहरण के लिए इंग्लैंड, कनाडा और न्यूजीलैंड जैसे देशों ने ऐसा संकट अनुभव करने के बाद ही पहली बार विशाल आधार पर बेरोजगारी हितकर कार्यक्रम विकसित किये थे और वर्तमान अमरीकी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था भी विशाल मंदी के दौर की उपज है। यदि ऐसे उन्नत देशें में ऐसी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्थाएं न रही होतीं तो हाल के संकट का प्रभाव निश्चित ही और भी गहरा होता। इसे रेखांकित करना महत्त्वपूर्ण है कि पिछले वित्तीय संकट के दौरान गरीबी से जुड़े मामलों पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया था। विश्व बैंक समूह भी यही सुझाव देता है कि संकट के बाद नहीं, बल्कि उसकी शुरूआत से ही सामाजिक सुरक्षा के पहलुओं पर विचार करना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

7.104 जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, चीन और भारत जैसी उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं कई कारणों से हाल के संकट से अधिक प्रभावित नहीं हुई हैं, लेकिन आने वाले समय में उन्नत बाजारों के साथ उनका व्यापार और वित्तीय एकीकरण और बढ़ने की उम्मीद है। अत: बाहरी आघात के प्रति ऐसे लचीलेपन की गारंटी नहीं दी जा सकती है। ऐसे परिदृश्य में, यह न केवल महत्त्वपूर्ण, बल्कि चुनौतीपूर्ण भी हो जाता है कि उभरते हुए और विकासशील देश एक क्रमश: एक प्रभावी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था को अपनायें। इससे न केवल स्थिरता के स्वचालित तत्वों को बेहतर तरीके से कार्य करने में मदद मिलेगी, बल्कि यह व्यापक स्तर पर आकस्मिक ढंग से विवेकपूर्ण राजकोषीय उपायों को आरंभ करने की आवश्यकता को भी कम करेगा जो कि दीर्घावधि के राजकोषीय पोषण संबंधित चिंताओं को केंद्र में लायेगा। इसके अलावा, ऐसे देशों में जिनमें अतिशय चालू खाता अधिशेष है, वहाँ ऐसी संरचनात्मक नीतियों का अनुसरण करने से वैश्विक असंतुलनों से एक टिकाऊ स्तर पर निपटने में सहायता मिलेगी। सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था और वित्तीय बाजारों में सुधार से ऐसे देशों में लंबी अवधि के दौरान निजी बचत राशियाँ भी घट सकती हैं।

भावी संकट के सामने आत्म-सुरक्षा

7.105 हाल के संकट और उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं पर उसके प्रभाव से एक बहस आरंभ हुई है कि क्या देशों को ऐसे भावी संकटों के खिलाफ अपने विदेशी मुद्रा भंडारों को निर्मित कर आत्म-रक्षा को सुनिश्चित करना चाहिए। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2010 बी) के अनुसार बाह्य भेद्यता को कम करते हुए अधिक मात्रा में अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा भंडार धारिताएं संकट के प्रभाव को कम करने में सहायक होती हैं। लेकिन आरक्षित निधियों का टांसमान प्रतिलाभ था; जब अधिक निधियाँ बहुत अधिक थीं तो उनका उत्पादन के ध्वस्त हो जाने पर कोई नियामक प्रभाव रहा हो इसके सुस्पष्ट प्रमाण नहीं है। इस संदर्भ में दो प्रतिवादी तर्क हैं। ब्लांकहार्ड और अन्य (2009) का दृष्टिकोण है कि ऐसे किसी निष्कर्ष को निकालना कठिन है कि ऐसी आत्म-सुरक्षा सचमुच सफल रही थी। हालांकि अधिकांश उभरते बाजार हाल के संकट का अतीत की तुलना में बेहतर ढंग से सामना कर सके तो इसके पीछे ये तथ्य थे कि प्रथम तो यह संकट उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में जन्मा था और दूसरा यह कि उभरती अर्थव्यवस्थाओं में अतीत की तुलना में बेहतर समष्टि-आर्थिक नीतियाँ और ढाँचे थे। इसे रेखांकित करते हुए उनका तर्क है कि हालांकि ब्राजील के पास मेक्सिको की

तुलना में अधिक आरक्षित राशियाँ थीं और सकल घरेलू उत्पाद की दृष्टि से भी वह बेहतर था फिर भी ऋण चूक विनिमय व्यवस्था में कीमत-लागत अंतर की दृष्टि से कार्यनिष्पादन में बहुत कम अंतर था। सारांश यह कि ब्राजील में भारी आरक्षित राशियों के बावजूद बाजारों ने मेक्सिको को उससे अधिक भेद्य नहीं पाया था।

7.106 ट्रुमैन (2009) का मत है कि आरक्षित राशियों के संचयन से आत्म-सुरक्षा का प्रयास वैश्विक संकट से एक गलत सबक सीखना हो सकता है। उनके अनुसार देशों को भावी संकट से अपनी सुरक्षा जहाँ तक हो सके सुदृढ़ आर्थिक और वित्तीय नीतिगत ढाँचों को अपनाते हुए करनी चाहिए। उस तरह की आत्म-सुरक्षा का एक तरीका विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों की पर्याप्त धारिता होनी चाहिए लेकिन केवल वही पर्याप्त नहीं है। विदशी मुद्रा आरक्षित निधियों की बड़ी धारिताएं वैश्विक वित्तीय संकट के विरुद्ध एक खर्चीला प्रतिरोध प्रदान करती हैं। दक्षिण कोरिया के मामले को उद्धृत करते हुए, जहाँ फरवरी 2008 में 264 बिलियन अमरीकी डालर के विदेशी मुद्रा भंडार थे, उनका निष्कर्ष है कि विदेशी मुद्रा भंडारों को निर्मित करने से आत्म-सुरक्षा की गारंटी नहीं मिल जाती। संकट के दौरान निधियों का सकल आगमन और बहिर्गमन महत्त्वपूर्ण होता है, न कि चालू खाते के निवल अधिशेष या अन्तरराष्ट्रीय आरक्षित निधियों का निवल संचयन। इसके अलावा विदेशी आरक्षित निधियों के स्रोत इस बात को निर्णित करने में एक महत्त्वपूर्ण कारक हैं कि आत्म सुरक्षा के एक उपकरण के रूप में उनका टिकाऊपन कितना है। तथापि, ट्रुमैन इस बात से सहमत हैं कि संकट आरंभ होने से पहले के दौर में यदि कोरिया के चालू खाते में भारी घाटे की स्थिति होती या जब संकट आरंभ हो गया तब यदि कोरिया के पास विदेशी मुद्रा की आरक्षित निधियाँ अल्प मात्रा में होती तो उसे और गहरे संकट का सामना करना पड़ता, लेकिन संकट से आत्म-सुरक्षा के लिए विदेशी मुद्रा का विशाल भंडार अपर्याप्त था। संक्षेप में यह कि केवल विदेशी मुद्रा भंडार निर्मित करना ही आत्म-सुरक्षा का उपाय नहीं हो सकता। उसके साथ-साथ सुदृढ़ आर्थिक और वित्तीय नीतिगत ढाँचा भी मौजूद होना चाहिए। वैश्विक वित्तीय सुरक्षा संजाल (जीएफएसएन) विशेषज्ञ समूह जी-20 मंच के तहत इन मुद्दों पर विचार कर रहा है।

7.107 भारत की विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों की निश्चिंत स्थिति उसके निर्यात की निम्न मांग और पूंजी प्रवाहों की मंद स्थिति के बावजूद उसे भुगतान संतुलन का प्रबंध करने का विश्वास देती है (सुब्बाराव 2009 ए)। पर्याप्त विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों की अनुपस्थिति में विनिमय दर पर दबाव को रोकना शायद बहुत चुनौतीपूर्ण होता। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों के संचयन की इस प्रवृत्ति के मूल में कारण यह है कि अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसी बहुपक्षीय वित्तीय संस्थाओं का प्रत्युत्तर बहुत अपर्याप्त रहा है। पूर्वी एशियाई संकट के समय वित्तीय सहायता की कमी के अनुभव ने उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं में भावी संकट से किसी हद तक अछुते रहने के लिए विदेशी मुद्रा आरक्षित निधियों के संचयन की प्रवृति आयी। हाल के संकट के दौरान फेडरल आरक्षित निधि की विश्व भर में केंद्रीय बैंकों को विनिमय व्यवस्था प्रदान करने की इच्छा और अन्य केंद्रीय बैंकों को प्रत्यक्ष रूप से चलनिधि का प्रावधान सुनिश्चित करना शायद परोक्ष रूप से संकट के समय सुरक्षा के लिए अलग-अलग केंद्रीय बैंकों द्वारा विशाल मात्रा में विदेशी मुद्रा आरक्षित राशियों को निर्मित करने की आवश्यकता को दर्शाता है। तथापि आत्म-सुरक्षा की इस जरूरत को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीय और बहुपक्षीय दोनों आधार पर चलनिधि के प्रावधान और आरक्षित निधि प्रबंधन के लिए अधिक प्रभावी तंत्र के द्वारा कम किया जा सकता है। संकट से उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के लिए एक दूसरा महत्त्वपूर्ण सबक रहा है कि वह एक छोर की परिकल्पना, जिसमें यह अवधारणा थी कि देश विनिमय दर व्यवस्थाओं के समय की तरह विनिमय दर के चयन में, अर्थात पूर्णतया लचीली या नियत विनिमय दरों के चयन में एक कोने या दूसरे कोने में जायेंगी, अब पुरानी पड़ चुकी है और आज मध्यवर्ती व्यवस्थाओं की जरूरत है।

7.108 निष्कर्ष यह कि हाल का घटनाक्रम स्पष्ट रूप से इस मुद्दे को उठाता है कि क्या उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में पैदा हुए विशाल आर्थिक आघात के संचरण से स्वयं को सुरक्षित रख सकती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि चालू खाता और राजकोषीय संतुलनों को सुधारते हुए अलग-अलग देशों की भेद्यताओं को कम कर उन्हें वित्तीय दबावों के संचरण से पूरी तरह पृथक नहीं रखा जा सकेगा, बल्कि सुदृढ़ नीतिगत ढाँचे के द्वारा इन प्राचलिकों में सुधार लाकर ऐसी स्थितियों में किसी समुचित घरेलू नीतिगत प्रत्युत्तर को कार्यान्वित करने के लिए निश्चित रूप से ज्यादा गुंजाइश बनती है और वह अधिक तेजी से पुन: बहाली की सुविधा प्रदान करता है। इसी प्रकार, संकट ने यह महत्त्वपूर्ण सबक दिया है कि तीव्र और विघटनकारी मूल्यह्रास को रोकने के लिए फोरेक्स बाजार का हस्तक्षेप अब गुनाह नहीं है और आरक्षित निधियाँ अब नयी खूबी है। इस प्रकार, यह अनुभव किया गया हे कि वैश्विक वित्तीय सुरक्षा संजाल के किसी भी

ढाँचे में तीन सैद्धान्तिक स्तंभ होने चाहिए। पहला, घरेलू वित्तीय सुरक्षा संजाल में एक सुदृढ़ अन्तरराष्ट्रीय आरक्षित निधि और विवेकपूर्ण ढाँचा हो। दूसरा, क्षेत्रीय वित्तीय सुरक्षा संजालों में क्षेत्रीय विनिमय व्यवस्था भंडार और द्विपक्षीय विनिमय व्यवस्था भंडार होने चाहिए। और अंत में वैश्विक सुरक्षा संजाल में बहुपक्षीय संस्थाओं के लिए एक विस्तृत भूमिका है।

X. नीति निर्माताओं के लिए प्रमुख चुनौतियाँ

7.109 उपर्युक्त सबक यह सुझाते हैं कि हाल के संकट के सन्दर्भ में बहुत सारे उपायों पर विचार करने की आवश्यकता है। उस संदर्भ में सभी नीतिगत सबक और सुझाये गये उपायों का लक्ष्य भेद्यता को कम करना और वित्तीय स्थिरता को बनाये रखना है। तथापि, वित्तीय स्थिरता के लिए उत्तरदायित्व उसकी प्रकृति के कारण सरकार, केंद्रीय बैंक और अन्य विनियामकों को लेना होगा। इस प्रकार, संकट से उजागर कमजोरियों का निर्धारण और उपर्युक्त प्रथाओं को अपनाना नीतिनिर्माताओं के सम्मुख एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा। इस संदर्भ में कुछ प्रमुख चुनौतियों को नीचे रेखांकित किया गया है।

वित्तीय नियंत्रण का भविष्य

7.110 हाल के संकट के विभिन्न कारणों में एक व्यापक स्तर पर पहचाना गया कारण वित्तीय नियंत्रण में कुछ असफलताओं से संबंधित है। स्पष्ट है कि इससे वित्तीय नियंत्रण को सुधार लाने के लिए एक महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम आरंभ करने की आवश्यकता है ताकि नियंत्रणकारी ढाँचा ऐसे संकट की पुनरावृति को रोक सके। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्री, केंद्रीय बैंकर, वित्तीय नियामक और विशेषज्ञ विनियामक ढाँचे के उन प्रमुख क्षेत्रों पर विचार कर रहे हैं, जिनमें मध्यावधि और दीर्घावधि में सुधार किये जाने की आवश्यक है। तथापि, सुधार कार्यक्रमों को आगे बढ़ाने में नीति निर्माताओं को निम्नलिखित चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।

7.111 नीतिनिर्माताओं के सम्मुख एक महत्त्वपूर्ण चुनौती उनके विनियामक प्रारूपों के निर्धारण से संबंधित है। उदाहरण के लिए इस मुद्दे पर व्यापक स्तर पर चर्चा हुई है कि क्या केंद्रीय बैंक को बैंक विनियमकारी और पर्यवेक्षण का कार्य भी करना चाहिए। यह तर्क दिया गया है कि एक केंद्रीय बैंक अंतिम उधारदाता का अपना कार्य अधिक कुशलता के साथ कर सकता है यदि निवारक कार्रवाई करने के लिए उसका अधिदेश केवल वित्तीय संस्थाओं की निगरानी करने से आगे जाये। यह तब संभव है जब केंद्रीय बैंक के पास बैंक पर्यवेक्षण का उत्तरदायित्व भी हो। इसके अलावा, वित्तीय व्यवस्था में वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए मौद्रिक नीति, जो कि एक समष्टि विवेकपूर्ण कार्य है और बैंक पर्यवेक्षण जो कि व्यष्टि-विवेकपूर्ण कार्य है, दोनों के बीच एक स्वाभाविक सहक्रिया हो। दूसरी ओर कुछ इसका समर्थन नहीं करते कि केंद्रीय बैंकरों को बैंकिंग विनियामकों का कार्य भी करना चाहिए क्योंकि इससे मौद्रिक नीति का संचालन करते हुए नैतिक संकट की समस्या पैदा हो सकती है। यह तर्क दिया गया है कि केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति के विरूद्ध एक 'नरम' रूख अपनायेगा क्योंकि ब्याज दरों में वृद्धि से बैंकों के तुलनापत्रों पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। इसके अलावा, अधिक जटिल अधिदेशों के होने से केंद्रीय बैंक अपनी जवाबदेही से आसानी से बच सकते हैं। अत: प्राधिकारियों के सम्मुख यह एक महत्त्वपूर्ण और संभव है कि एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो कि वे समग्र रूप से अपनी वित्तीय व्यवस्था में विनियामक मॉडेलों की जाँच करें और अपने देश की विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार यदि उन्हें कुछ परिवर्तन आवश्यक लगें तो उन्हें करें। यदि वर्तमान विनियामक मॉडेल अधिक उपयुक्त लगें तब भी केंद्रीय बैंकिंग और पर्यवेक्षण कार्यों के बीच एक सुचारू और कुशल संबंध के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। वित्तीय दबाव की परिस्थितियों में केंद्रीय बैंक के वित्तीय स्थिरता संबंधी निर्धारणों की प्रभावोत्पादकता के लिए पर्यवेक्षण संबंधी जानकारी आवश्यक रहती है। इसके विपरीत, पर्यवेक्षकों को एक-एक संस्था की तुलना में अपनी कार्रवाई पर विचार करते समय केंद्रीय बैंकों के प्रणालीगत परिप्रेक्ष्य से लाभ उठाना चाहिए।

7.112 दूसरी चुनौती प्रतिरोध संबंधी है और नीतिनिर्माताओं और अन्तरराष्ट्रीय मानक निर्धारण निकायों को तब इसका सामना करना पड़ सकता है जब वे वित्तीय बाजार के प्रतिस्पर्धियों को वांछित भावी सुधार कार्यक्रम के बारे में सहमत करने का प्रयास करेंगे। क्लाएसेंस और अन्य (2010) के अनुसार ''अधिकांश देशों में वित्तीय सेवा उद्योग में बड़े स्तर के न्यस्त स्वार्थ हैं और इसलिए इस प्रक्रिया के अंतिम परिणाम को राजनीतिक लॉबी महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करेगी।'' हाल के संकट ने इसे रेखांकित किया है कि बासेल ढाँचे के तहत प्रचलित व्यष्टि-विवेकपूर्ण पर्यवेक्षण प्रणालीगत जोखिम की रोकथाम के लिए पर्याप्त नहीं है। पर्यवेक्षण के ढाँचे में समष्टि-विवेकपूर्ण उपायों को शामिल करने की आवश्यकता निर्विवाद है। संभवत: जिन नुस्खों की सिफारिश की जा रही है, वे सर्वथा नये नहीं हैं और अनेक केंद्रीय बैंक और वित्तीय नियंत्रक वित्तीय स्थिरता निर्धारण और समष्टि विवेकपूर्ण

पहलुओं के सूक्ष्म संदर्भों से जुड़े कार्यों में लगे रहे हैं। आवश्यकता इस प्रक्रिया को रूपाकार देने और सुदृढ़ बनाने की है। वे संभावी समष्टि-विवेकपूर्ण उपकरण जिन्हें और भी खोजा जा सकता है, उनमें अधिक सरल संकेतकों वाले ऐसे जोखिम आधारित पूंजीगत उपायों पर विचार करना, जिनका लक्ष्य तुलनपत्र के बाहर के ऋण जोखिमों के प्रति अधिक संवेदनशीलता सहित लीवरेजों की निर्मित को आंकना हो; वे पूंजीगत आवश्यकताएं जिन्हें वित्तीय चक्र में समायोजित किया जाये; ऋण-हानि प्रावधान संबंधी वे मानक जो सभी उपलब्ध साख सूचना को समाविष्ट कर लें; जोखिम और मार्जिन आवश्यकताओं के निर्धारण के लिए अधिक लंबी अवधि वाले ऐतिहासिक नमूनों का उपयोग; और बंधकों के लिए मूल्य के समक्ष ऋण अनुपातों पर अधिक एकाग्रता - ये सभी शामिल हैं। इस संदर्भ में वास्तविक चुनौती ऐसे महत्त्वाकांक्षी सुधार कार्यक्रम के बारे में बाजार सहभागियों को इसके लिए सहमत करना होगा। सच तो यह है कि विभिन्न हलकों में यह माना जा रहा है कि वित्तीय व्यवस्था में सुधार लाने की अत्यावश्यकता और जोर धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। आसान होती स्थितियों ने असहमत स्वरों को सुविधा और गुंजाइश प्रदान कर दी है। बाजार सहभागियों के बीच से अब ऐसे स्वर अधिक मुखर होने लगे हैं जो या तो अंतर्निहित रूप से व्यवस्थागत गारंटियों या चलनिधि के मार्फत संकट से बाहर निकल आये थे या कुछ निर्णायक सुधार उपायों के तहत जिन्हें विशिष्ट जमानत मिल गयी थी। अतीत की तरह ही दो मुख्य तर्क दिये जा रहे है प्रथम, अल्पावधि के आर्थिक विकास का जोखिम विपरीत प्रभाव डाल रहा है और दूसरे, प्रमुख वित्तीय केन्द्रों में सभी को समान अवसर देने से यह भय कि इससे कारोबार अवसर समाप्त हो रहे हैं और पहले कार्य करने वालों के लिए स्पर्धा उत्पन्न हो रही है। तथापि, राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय नीति निर्माण निकायों को भावी सुधार कार्यक्रमों के बारे में अल्पकालीन और दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में उनके निहितार्थों पर सर्तकता से विचार करना होगा।

7.113 विनियामकों के लिए तीसरी चुनौती वर्तमान सूचना संबंधी विषमताओं से जुड़ी हुई है। अतीत में विनियामकों में प्रति-चक्रीय उपायों को करने में उदासीनता इस तर्क पर आधारित थी कि विनियामकों को बाजार के बारे में इतनी बेहतर जानकारी नहीं थी कि क्या आस्ति मूल्य को कायम नहीं रखा जा सकेगा या यह बाजार में अस्थायी उछाल है, या क्या यह उछाल चक्रीयता की वजह से है या उसके मूल में उत्पादकता वृद्धि है। वर्तमान सोच ने अतिशय जोखिम उठाने या आस्ति में अस्थायी उझाल को रोकने के लिए प्रति-चक्रीय उपायों को करने आवश्यकता पर बल दिया है। इसे लोकप्रिय मुहावरे में "मिश्रण का कटोरा हटा लेना" कहा जा सकता है। यह एक अलोकप्रिय लेकिन हाल के संकट के अनुभव के परिप्रेक्ष्य में संभवत: आवश्यक है। इस पर आम सहमति बन रही है कि विनियामकों के पास भले ही `संतुलनकारी' आस्ति मूल्यों या व्यवसाय-चक्रों की जानकारी न रही हो, लेकिन वे उन संकेतकों को देख सकते थे जो अर्थव्यवस्था और वित्तीय बाजारों के विभिन्न हिस्सों में बन रही भेद्यताओं की ओर इशारा करते थे। यदि मिल रहे प्रमाण बढ़ती हुई अस्थिरता की दिशा में इशारा कर रहे हों तो नीति प्राधिकरणों के लिए यह अनिवार्य है कि वे अस्थिरता की ओर बढ़ती स्थिति पर नियंत्रण और उसके निवारण के लिए अग्रगामी रूप से कार्य करें। इस संदर्भ में व्यवसाय-चक्रों के बारे में समझ को बढ़ाने और परिवर्तन के बिन्दुओं की शिनाख्त के लिए तकनीकी कार्य आरंभ किया जाना चाहिए। पूंजीगत सुरक्षा में आये परिवर्तनों के लिए प्रेरक-कारक तत्वों को परिभाषित किया जाना चाहिए। तथापि, नीति निर्माताओं को विशेष रूप से उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाआंट के नीतिनिर्माताओं को व्यवसाय-चक्रों की शिनाख्त के लिए पर्याप्त आंकड़ों की कमी की अतिरिक्त समस्या का सामना करना पड़ सकता है।

7.114 चौथे, अनेक केंद्रीय बैंकरों और वित्तीय क्षेत्र के विनियामकों/विशेषज्ञों ने वर्तमान समष्टि-विवेकपूर्ण ढाँचे को मोटे तौर पर तीन क्षेत्रों में सुदृढ़ बनाने पर जोर दिया है, जो पूंजी पर्याप्तता ढाँचे, चलनिधि जोखिम प्रबंध और ओटीसी व्युत्पन्नियों के ढांचे से संबंधित हैं। आगे बढ़ते समय विनियामकों के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि वे विनियमों और बाजार नवाचारों के बीच एक सही संतुलन को खोजें। एक प्रमुख उद्देश्य वित्तीय संस्थाओं की निगरानी और बाजारों के बीच के अंतराल को भरना और विनियामक व्यवस्था को अद्यतन और आधुनिक बनाने से संबंधित है ताकि बाजार की वास्तविकताओं और वैश्विक एकीकरण के साथ कदम मिलाकर चला सके। एक और विनियामकों को अतिशय लीवरेजों और जोखिम उठाने पर नियंत्रण रखते हुए जोखिमों की शिनाख्त के लिए पर्यवेक्षकों की क्षमता को बेहतर बनाने की आवश्यकता है; दूसरी ओर उन्हें घरेलू-मेजबान पर्यवेक्षण के समन्वयन की चुनौती का सामना करना पड़ सकता है। महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को अधिराष्ट्रीय निकायों को अंतरित करने में राष्ट्रीय प्राधिकरणों के विरोध की परिणति पुन: असम्बद्ध और भेद्य विनियामक ढाँचों में हो सकती है। अत: कुछ सबक बहुत स्पष्ट और सरल प्रतीत होते हैं लेकिन वास्तव में उन्हें कार्यान्वित करना काफी चुनौतीपूर्ण होता है।

7.115 संक्षेप में, नीतिनिर्माताओं के सामने वित्तीय व्यवस्थाओं को इस रूप में आगे बढ़ाने और पुनर्गठित करने की चुनौती है कि वे वित्तीय स्थिरता और वृद्धि को प्रोत्साहित कर सकें। वित्तीय विनियामक ढाँचे का कायाकल्प करने की आवश्यकता है। हाल के संकट से सामने आयी कमजोरियों के संदर्भ में नीतिनिर्माताओं को उनके अपने देशों में अमल में लाये जा रहे विनियामक नमूनों की पर्याप्तता की सावधानी से परीक्षण करने की आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार, विनियामकों को यह भी सावधानी से निर्धारित करना होगा कि विनियमों की किस हद तक आवश्यकता है क्योंकि नये ढाँचे का क्रियान्वयन नपे-तुले ढंग से सतर्कतापूर्वक किया जाना है और संकट से बहाली की प्रक्रिया पर असर डालने वाली किसी भी संभावना को दूर करना है। किसी विनियामक कदम का सावधानीपूर्वक लागत-लाभ विश्लेषण करना इसलिए और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि अधिकांश प्रमुख अर्थव्यवस्थाएं अभी भी आर्थिक बहाली की ओर प्रारंभिक चरण में हैं। यह सुनिश्चित करना कि वित्तीय विनियम और पर्यवेक्षण वित्तीय नवाचारों के अनुरूप हैं, नीति प्राधिकरणों के समक्ष एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा। विनियमों के समुचित स्तर और वित्तीय क्षेत्र में सरकार की भूमिका का निर्धारण नीतिनिर्माताओं के लिए एक विकट कार्य बन सकता है। इसी प्रकार, आर्थिक विकास के अलग-अलग स्तरों के विभिन्न नमूनों को परिभाषित करना भी कठिन है। ऊपर उल्लिखित मुद्दे एक महत्त्वाकांक्षी कार्यक्रम की मांग करते हैं और इसके लिए न केवल राष्ट्रीय विनियामकों और पर्यवेक्षकों की सक्रिय सहभागिता आवश्यक होगी, बल्कि बासेल समितियों, अन्तरराष्ट्रीय मानक-निर्धारक एजेंसियों, वित्तीय स्थिरता बोर्ड और अन्य सम्बद्ध क्षेत्रीय और अन्तरराष्ट्रीय निकायों की भी आवश्यकता होगी। इसमें अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के लिए भी एक विस्तृत निगरानी अधिदेश की आवश्यकता होगी।

मौद्रिक प्राधिकारियों के लिए चुनौतियाँ

7.116 केंद्रीय बैंकों के लिए एक सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य यह है कि उनकी समष्टि-आर्थिक नीतियों का प्रबंध वैश्वीकरण से मिली चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में किस तरह से किया जाये। केंद्रीय बैंकों के लिए वैश्वीकरण को समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वैश्वीकरण अनेक मार्गों से, जैसे कि मुद्रास्फीति निर्माण की प्रक्रिया और मौद्रिक संचरण तंत्र के मार्फत मौद्रिक नीति ढाँचे के महत्त्वपूर्ण तत्वों को प्रभावित कर सकता है। अनुभव यह बताता है कि बाहरी परिवर्तन घरेलू समष्टि अस्थिर तत्वों को जटिल, अनिश्चित और अप्रत्याशित तरीकों से प्रभावित करते हैं और केंद्रीय बैंकों को इन पारस्परिक क्रियाओं की समझ को बढ़ाने की आवश्यकता है। तथापि, मौद्रिक नीति निर्माण में बाहरी कारकों को आंकने की चुनौती बहुविध होगी जो इस पर निर्भर करेगी कि खुलापन किस हद तक है और केंद्रीय बैंकों को दिये गये अधिदेश की प्रकृति क्या है। स्पष्ट है कि विस्तृत अधिदेशों वाले केंद्रीय बैंकों को पुन: उनकी घरेलू नीति की परिगणना करते समय बाहरी परिवर्तनों को भी हिसाब में लेना होगा। वर्तमान में यह विवाद का विषय है कि केंद्रीय बैंकों को बृहत्तर वित्तीय वैश्वीकरण को देखते हुए क्या अपने अधिदेशों की समीक्षा करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए क्या केंद्रीय बैंकों का अधिदेश विशुद्ध मुद्रास्फीति को साधने के परे भी विस्तृत किया जाना चाहिए और बढ़ते हुए आस्ति मूल्यों के रूप में निर्मित होने वाले तीव्र वित्तीय उछालों की संभावना को उन्हें किस तरह से देखना चाहिए।

7.117 हाल के संकट के पीछे जो विभिन्न कारण थे, उनमें सबसे मूलभूत कारण संकट से पूर्व के समय में प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में अनुग्राही मौद्रिक नीति और उसी के साथ एक बढ़ायी गयी अवधि के लिए निम्न ब्याज दरों का होना था। अनग्राही मौद्रिक नीति के बने रहने का परिणाम सुदृढ़ विश्वव्यापी समष्टि-आर्थिक वृद्धि के कारण मुद्रास्फीतिगत दबावों में नहीं हुआ और 'असाधारण मंदी' की घटना से केंद्रीय बैंक इसे मूल्य स्थिरता के संदर्भ में सफलता समझते रहे। तथापि, कईयों ने इस तथ्य को अनदेखा किया कि चलनिधि की अतिशयता बढ़ते हुए आस्ति मूल्यों में दिखाई पड़ रही है, जैसे कि अमेरिका में आवास मूल्य। अब केंद्रीय बैंकों के सामने एक चुनौती सावधानीपूर्वक इस पर सोचना होगा कि क्या आस्ति मूल्य मुद्रास्फीति के नियंत्रण को उनके अधिदेश में शामिल किया जाना चाहिए। उसी समय प्राधिकारियों को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि वित्तीय स्थिरता के उद्देश्य को उनके अधिदेश में शामिल करने से केंद्रीय बैंकों की आत्मनिर्भरता क्षीण न हो। इसी प्रकार, इसका निर्धारण करने की आवश्यकता है कि विस्तृत अधिदेश को पूरा करने के लिए क्या केंद्रीय बैंक यथोचित उपकरणों से लैस हैं। इस संदर्भ में स्माघी (2009) का तर्क है कि जब तक केंद्रीय बैंक समुचित समष्टि विवेकपूर्ण पर्यवेक्षण उपकरणों से स्पष्ट रूप से सुसज्जित नहीं हैं, उन्हें वित्तीय स्थिरता के लिए उत्तरदायी नहीं समझा जा सकता। यद्यपि, इस मुद्दे पर सर्वसम्मति नहीं है, केंद्रीय बैंकों को आवश्यक तौर अपने समष्टि-आर्थिक निर्धारण की पद्धति को सुदृढ करना होगा। यह उल्लेखनीय है कि मौद्रिक नीति के बेहतर और कुशल संचरण तंत्र के लिए वित्तीय स्थिरता एक महत्त्वपूर्ण पूर्वापेक्षा है। इस प्रकार, मुद्दा यह बन गया है

कि केंद्रीय बैंकों द्वारा उपयोग में लाये जा रहे संचरण तंत्र के मानक नमूनों में वित्तीय कारकों को कैसे शामिल किया जाये। चूंकि किसी भी एजेंसी या विनियामक को सुनिश्चित रूप से वित्तीय स्थिरता का अधिदेश नहीं है, इसलिए एक अर्थपूर्ण अवधारणा की निर्मिति और वित्तीय स्थिरता के उपायों को करना केंद्रीय बैंकों जैसे नीति प्राधिकारियों के लिए एक चुनौतीपूर्ण कार्य होगा।

7.118 गैर-पारम्परिक मौद्रिक उपायों का उपयोग करते हुए अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दा केंद्रीय बैंकों के लिए उनके तुलनपत्र संबंधी आशयों और अधिकाधिक प्रोत्साहन देते हुए अतिशय जोखिम उठाने के रूप में बाजार सहभागियों के लिए उत्पन्न नैतिक संकट की समस्या से जुड़ा हुआ है। हाल के संकट के दौरान अधिकांश उन्नत देशों के केंद्रीय बैंकों के तुलनपत्रों में उनके गठन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ भारी विस्तार हुआ। चलनिधि/अविपणनीय आस्तियों को उसमें शामिल किया गया। विशेषकर विशाल अतिशय आरक्षित निधियों के परिणामस्वरूप त्वरित साख विस्तार होता है जो मुद्रास्फीतिगत दबावों को तीव्र करता है। ये केंद्रीय बैंक के समक्ष ब्याज दर जोखिम, और सैद्धान्तिक रूप में तो साख जोखिम भी पैदा करते है। तथापि, संभव है कि आस्तियों की पुनर्बिक्री उतनी सरल न रहे। भारी घाटों को पूरा किया जा सकता है, जो कि राजनीतिक रूप से असंगत होगा और विश्वसनीयता को घटा सकता है। इसके अलावा, केंद्रीय बैंक के तुलन पत्र में कुछ खास किस्म की आस्तियों की विक्रेयता का न होना सामान्य खुले बाजार परिचालनों में उपयोगी भी नहीं होगा। इससे चलनिधि प्रबंध परिचालन में बाधा पड़ सकती है और इस प्रकार मुद्रास्फीतिगत दबावों के दोबारा उभरने पर वह मौद्रिक नीति के सामर्थ्य को कम कर सकता है।

समुचित निकास रणनीतियों को बनाने की चुनौतियाँ

7.119 पिछले कई बैंकिंग संकटों की तरह वर्तमान वित्तीय शोधक्षमता संकट के प्रस्तावित समाधानों ने तीन प्रमुख तत्वों को सम्बद्ध किया है देयताओं की गारंटी देना; संस्थाओं का पुन:पूंजीकरण; और संकटग्रस्त आस्तियों को पृथक करना। तथापि, ये नीतियाँ समझौताकारी समन्वयन की चुनौतियों से परिपूर्ण हैं। एक तरफ पुनर्संरचना की क्रियाविधि उत्पादक निवेश को दोबारा आरंभ कर सकती है तो दूसरी तरफ वित्तीय सहायता की भारी लागत है। इसी प्रकार राहत पैकेज भी पूंजी के गलत आबंटन या प्रोत्साहनों में आये विकार और नैतिक संकट के जोखिमों के कारण लागतों को जन्म दे सकते हैं। इन उपायों के लिए संवितरण संबंधी प्रभाव भी अपरिहार्य हैं क्योंकि ये सामान्यतया संसाधनों को करदाताओं से शेयरधारकों की ओर अंतरित करते हैं। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष स्टाफ के एक आकलन के अनुसार जी-20 देशों द्वारा दिये गये राजकोषीय उद्दीपकों का केवल पाँचवा हिस्सा ही स्थायी है। इसके बावजूद नीति निर्माताओं के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे समुचित निराकरण नीतियों की रचना कर ऐसी निकास रणनीति पर विचार करें जिसमें संभावित लागत और इन नीतियों के लाभों के बीच एक सही संतुलन हो। सरकारी कर्ज को विवेकपूर्ण स्तरों तक लाने और पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा के संजाल को बनाये रखते हुए ऐसे समायोजन को समर्थन देने के लिए राजकोषीय संस्थाओं को सुदृढ बनाने हेतु उन्नत और उभरती अर्थव्यवस्था - दोनों जगहों पर राजकोषीय प्राधिकारियों के सामने राजकोषीय समायोजन रणनीतियाँ बनाने के समय चुनौतियाँ आने की संभावना है। कुछ उभरती अर्थव्यवस्थाओं में निम्न और अधिक अस्थिर राजस्व आधारों और अल्पावधि के विदेशी कर्ज पर ज्यादा निर्भरता के कारण बड़े कर्जों के लिए बाजार की सहनशक्ति की कम होगी और इसके चलते वे ऐसे निम्नतर कर्ज अनुपात का लक्ष्य सामने रख सकती है जो कि संकट के पहले के स्तरों से भी कम हो। इसी प्रकार केंद्रीय बैंकों को जिन्हें कि बाजार की परिस्थितियों की तीव्र मांग के कारण प्रणालीगत चलनिधि प्रावधान के लिए अपने परिचालन ढाँचे का विस्तार करना पड़ा था, उन्हें साख समस्याओं के उन दीर्घकालीन परिणामों के साथ नहीं छोड़ देना चाहिए, जो कि तदर्थ उपायों के कारण उत्पन्न हो सकते हैं। अन्यथा इससे तत्काल बाद की अवधियों में उनके नीतिगत चयन विरुपित हो सकते हैं। इस प्रकार, नीति निर्माताओं को उपायों को वापस लेते समय उनके अवधारण, सामयिकता और क्रमिकता के बारे में सतर्क दृष्टिकोण अपनाना होगा।

7.120 वैश्विक संकट के प्रत्युत्तर में विश्वभर में देशों द्वारा दिये गये नीतिगत प्रोत्साहनों की अभूतपूर्व मात्रा यद्यपि परिस्थिति की तात्कालिकता से प्रभावित थी और एक बड़ी हद तक इसके कारण दूसरी विशाल मंदी का दौर नहीं आया, लेकिन इन प्रोत्साहनों की मात्रा इतनी प्रचुर रही है कि 'नयी सामान्य' स्थिति की ओर लौटते हुए निकास का प्रबंधन बहुत महत्त्वपूर्ण होगा जिससे कि दोहरी डुबकी, बाजार क्रमभंगताओं और भावी मुद्रास्फीति की स्थिति को टाला जा सके। इस संदर्भ में एक बार जब वैश्विक अर्थव्यवस्था गति पकड़ने लगेगी तो वापसी का समय और गति बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण होगी। उत्प्रेरक उपायों से बाहर निकलने के अनुक्रम में कुछ मुद्दों पर विचार

आवश्यक है जैसे कि (i) पहले मौद्रिक नीतियों को खोला जाये अथवा राजकोषीय नीतियों को, (ii) पहले परम्परागत नीतियों से बाहर निकला जाये या गैर-परम्परागत नीतियों से और (iii) क्या एक समन्वित तरीके से बाहर निकला होगा। निकासी की गति के बारे प्राधिकारियों को विचार करना होगा कि नीतियों को शिथिल करने की प्रक्रिया आक्रामक ढंग से की जाये या क्रमबद्ध रूप में। इस तथ्य के बावजूद कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में अपेक्षा से अधिक तीव्र गति से बहाली हो रही है, ऐसा अधिकाधिक माना जा रहा है कि संकट के बाद की निकासी का प्रबंधन संकट के समय के उस प्रबंधन से जब प्रोत्साहन दिये गये थे, कम जटिल और चुनौतीपूर्ण नहीं होगा। संकट से उबरने की प्रक्रिया के बारे में यह माना जा रहा है कि वह अभी भी कमजोर है और वह सभी देशों में एक जैसी नहीं है क्योंकि अलग-अलग देश वैश्विक एकीकरण के अलग-अलग स्तरों पर हैं इसलिए चक्रों की विभिन्न अवस्थाओं में है और वे बहाली को बनाये रखने के लिए प्रोत्साहनों पर उसी सीमा तक निर्भर भी नहीं है। इसके अलावा यूरोप के ताजे घटनाक्रम यह बताते हैं कि वैश्विक अर्थव्यवस्था में अभी भी कुछ कमजोर स्थल बचे हुए है। यद्यपि, निकास रणनीतियों की रूपरेखा के देश विशेष की परिस्थितियों के अनुसार ही रहने की अधिक संभावना है फिर भी प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण देशों की नीतिगत निकासियों के एक अन्तरराष्ट्रीय समन्वयन की आवश्यकता भी अनुभव की जा रही है। इस संबंध में नीतिगत समन्वयन की कमी से एक देश से दूसरे देश में ब्याज दरों के विभेदों के कारण अनपेक्षित ढंग से प्रतिकूल प्रभावों का छितराना पुन: केंद्रीय बैंकों के लिए चुनौतियाँ पैदा कर सकता है। निकास नीति के चुनावों से अनपेक्षित प्रतिकूल प्रभावों के छितराने की संभावना अन्तरराष्ट्रीय सुसंगतता के महत्त्व को रेखांकित करती है पर जरूरी नहीं कि वह समक्रमिकता भी हो। इसके अतिरिक्त विभिन्न नीतिगत उपायों से बाहर आने की रणनीतियों को सम्प्रेषित करना भी चुनौतीपूर्ण कार्य होगा। उदाहरण के लिए राजकोषीय नीतिगत उपायों से निकास की समय से पहले सूचना बाजार में भरोसे को क्षति पहुँचा सकती है और पुन: सामान्य होने की चिंताओं को और बढा सकती है। अत: नीतिनिर्माताओं के लिए यह एक चुनौतीभरा कार्य होगा कि निकास रणनीतियों के बारे में क्या और कैसे सम्प्रेषित किया जाये। कुछ नीतिगत उपायों की निकासी के बारे में असामयिक या समय से पहले सम्प्रेषण वांछनीय नहीं होगा और इस संबंध में नीतिनिर्माताओं को एक सावधानीपूर्वक निर्धारण करने की आवश्यकता है।

7.121 उपरोक्त चर्चाएं यह बताती हैं कि इस समय एक चिंता यह है कि प्रोत्साहन पैकेजों के रूप में विश्वभर में दिये गये अभूतपूर्व मौद्रिक समझौतापरक समन्वयन से निकासी के नपे-तुले उपाय कैसे किये जाएं। एक ओर जबकि मौद्रिक प्रोत्साहनों को समय से पहले वापस लेना बहाली की प्रक्रिया को पटरी से उतार सकता है, दूसरी ओर विलम्बित कार्रवाई से मुद्रास्फीति की अपेक्षाएं निर्मित हो सकती हैं। इसलिए निकासी की रणनीति को बनाते समय केंद्रीय बैंकों के सम्मुख प्रमुख चुनौती वृद्धि और मुद्रास्फीति के बीच संतुलन स्थापित करना होगी। यह उल्लेखनीय है कि कुछ केद्रीय बैंकों (उदाहरण के लिए रिज़र्व बैंक ऑफ आस्ट्रेलिया, पिपुल्स बैंक ऑफ चाइना, भारतीय रिज़र्व बैंक और बांकों सेन्ट्रल डो ब्राजील) ने मौद्रिक नियंत्रण बढ़ाने के उपाय आरंभ कर दिये हैं।

7.122 भारतीय संदर्भ में राजकोषीय और मौद्रिक निकासियों में समन्वयन पर मौद्रिक नीति 2009-10 की तीसरी तिमाही समीक्षा (29 जनवरी 2010) में जोर दिया गया था। मौद्रिक सहायता को वापस लेना तब तक प्रभावी नहीं हो सकता जब तक कि सरकारी उधारों की प्रवृत्ति में भी बदलाव नहीं हो जाता। इस बात के संकेत दिये गये थे कि भले ही सरकारी उधार 2008-09 और 2009-10 के दौरान आकस्मिक रूप से बढ़ गये थे उनका बहुत सारे ऐसे उपायों से प्रबंधन किया जा सका था जिन्होंने चलनिधि को सहारा दिया। चलनिधि में वृद्धि के वे विकल्प 2010-11 के दौरान उसी हद तक उपलब्ध नहीं होंगे। इतना ही नहीं, कुछ अतिरिक्त दबाव भी होंगे। मुद्रास्फीति के दबाव रहेंगे और निजी साख की मांग और भी अधिक होगी क्योंकि ऐसी साख के सूखते जाने की आशंका वास्तविकता बन रही होगी। इसी प्रकार, अल्पावधि के आर्थिक प्रबंधन और मध्यम अवधि की राजकोषीय स्थिरता दोनों के लिए राजकोषीय सुदृढ़ीकरण की राह पर लौटने के महत्त्व को रेखांकित करते हुए इसमें निम्नलिखित बातों की आवश्यकताओं पर जोर दिया गया है (i) राजकोषीय सुदृढ़ीकरण की राह को बताना और (ii) कर नीतियों और खर्च के दबावों की एक मोटी सी परिधि को स्पष्ट करना जो कि इस राह को परिभाषित कर सके। रिज़र्व बैंक ने विस्तारवादी मौद्रिक नीति से निकास के पहले चरण की घोषणा अक्तूबर 2009 में मौद्रिक नीति की दूसरी तिमाही समीक्षा में की जब उसने कुछ क्षेत्र - विशिष्ट सुविधाओं को समाप्त करने और अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों के सांविधिक चलनिधि अनुपात (एसएलआर) को संकट-पूर्व के स्तर पर लाने का निर्णय लिया। वर्तमान वैश्विक और घरेलू समष्टि-आर्थिक स्थितियों, दृष्टिकोण और जोखिमों की पृष्ठभूमि में इस बात का संकेत दिया गया कि वर्तमान नीतिगत अवस्थिति को रचने वाले कारक तत्वों में एक कारक यह है

कि पुन: सामान्य स्थिति की ओर लौटने का सुदृढ़ीकरण मौद्रिक नीति की अवस्थिति एक सुस्पष्ट और सुनिश्चित परिवर्तन की ओर इंगित करे जो कि 'संकट के प्रबंधन' से 'पुन: बहाली का प्रबंधन' हो और यह आवश्यक है कि इस प्रक्रिया को और आगे बढ़ाया जाये। तदनुसार, बाद में और भी मौद्रिक नियंत्रण उपाय किये गये।

अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा व्यवस्था के लिए चुनौतियाँ

7.123 संकट के बाद के समय में कुछ क्षेत्रों में एक आरक्षित मुद्रा के रूप में डालर की भूमिका और संभावित वैकल्पिक आरक्षित मुद्राओं के संबंध में चर्चा हुई है। यह तर्क दिया गया कि अमेरिका में आर्थिक और वित्तीय समस्याएं, विशेषकर उसके विशाल राजकोषीय असंतुलन डालर के मूल्य के लिए गंभीर जोखिम पैदा कर रही हैं और इसलिए अन्तरराष्ट्रीय व्यवस्था में अव्यवस्थित समायोजन है। आरक्षित मुद्रा से संबंधित समस्याओं को कैसे हल किया जाये इस बारे में कई सुझाव दिये गये हैं। फिलहाल तो यूएस डालर इन स्थितियों को संतुष्ट करता है और वह अन्तरराष्ट्रीय आरक्षित मुद्रा बना हुआ है। राष्ट्रों की आधिकारिक आरक्षित निधियों में यूएस डालर का हिस्सा उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की आरक्षित निधियों में हुई विशाल वृद्धियों के बावजूद पिछले 30 वर्षों में स्थिर रहा है। वैश्विक स्तर पर, विदेशी मुद्रा लेन-देनों का एक बड़ा हिस्सा यूएस डालर में होता है। इसी प्रकार, उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के व्यापार के एक बड़े हिस्से का बीजक यूएस डालर में बनता है। अत: वर्तमान में यूएस डालर का कोई विकल्प दिखाई नहीं देता और यह वैश्विक आरक्षित मुद्रा बना रहेगा। इसके बावजूद, वर्तमान व्यवस्था की कमियों को लेकर कुछ सहमतियाँ बन रही हैं। अन्तरराष्ट्रीय चलनिधि का प्रबंधन एक बुनियादी असंतुलन पर आधारित है, अर्थात, जबकि सकल घरेलू उत्पाद में अमरीकी प्रतिनिधित्व 25 प्रतिशत है, डालर केंद्रीय बैंक की अन्तरराष्ट्रीय चलनिधि के 65-75 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करता है। इसका अर्थ यह कि अन्तरराष्ट्रीय चलनिधि के प्रबंधन में राष्ट्रीय मुद्राओं पर अनुचित निर्भरता है। अत: अस्थिरता के हाल के दौर का पुन: घटित होना वैश्विक मौद्रिक व्यवस्था में आकस्मिक विच्छिन्न समायोजनाओं के बारे में अनिश्चितताओं को बढ़ाता है। इस संकट के दौरान वैश्विक असंतुलन भले ही किसी हद तक कम हो गये हों लेकिन वे सुलझाये नहीं गये हैं। यह बहुत कुछ अमरीका और प्रमुख उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं की मौद्रिक नीतियों पर निर्भर करेगा। कार्नी (2009) के अनुसार ''चूंकि अलग-अलग वृद्धि और मुद्रास्फीति की संभावनाओं के कारण भिन्न नीति-मिश्रणों की आवश्यकता होती है। ऐसा नहीं हो सकता कि जो मौद्रिक नीति अमेरिका के लिए उपयुक्त हो, वह अन्य देशों के लिए भी उपयुक्त होगी। .... यदि इष्टतम मौद्रिक नीति अवस्थिति में यह भिन्नता बढ़ती है तो व्यवस्था पर दबाव बढ़ते जायेंगे।'' इसका परिणाम विनिमय दरों पर, विशेषकर डालर पर होगा और वह उभरते बाजारों के लिए चुनौतियाँ पैदा करेगा। अत: अन्तरराष्ट्रीय मौद्रिक सुधार को हाल के संकट के टिकाऊ समाधान के एक अविभाज्य तत्व के रूप में देखा जाना चाहिए। एक आरक्षित मुद्रा के रूप में वैकल्पिक मुद्रा को इस बल पर उभरना होगा।

व्यापार संरक्षणवाद के निवारण की चुनौतियाँ

7.124 1930 के दशक में विशाल मंदी के अनुभव ने यह दर्शाया कि प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं ने संरक्षणवादी उपायों का सहारा लिया था। उन्होंने भारी मुद्रा अवमूल्यन किया, विनिमय प्रतिबंध लगाये, आयात शुल्क दर बढ़ा दी और आयात कोटा आरंभ किये। परिणामस्वरूप 1920 और 1933 के बीच वैश्विक व्यापार में 25 प्रतिशत की गिरावट आयी। हाल के संकट के दौरान हालांकि अक्तूबर 2009 और जनवरी 2009 के बीच विश्व व्यापार की मात्रा में 17 प्रतिशत की गिरावट आयी, पर यह संरक्षणवादी उपायों से भिन्न अन्य कारणों से थी। इस सच्चाई के बावजूद कि हाल के संकट के दौरान अधिकांश देश महत्त्वपूर्ण संरक्षणवादी उपायों से दूर रहे, यह माना गया है कि यदि प्रमुख उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में नौकरियों का खत्म होना जारी रहता है तो वे संरक्षणवादी उपाय दोबारा उभर सकते हैं। चूंकि उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में भारी बेरोजगारी बनी हुई है, एक बड़ी चिंता, जिसे अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (2010 ए) ने रेखांकित किया है, वह यह है कि अस्थायी बेरोजगारी एक दीर्घकालीन बेरोजगारी की स्थिति में बदल सकती है। चूंकि यूनान के नये संकट के पूरे यूरो क्षेत्र में फैलने का खतरा बना हुआ है, व्यापार संरक्षणवाद नीतिनिर्माताओं के लिए पुन: एक नीतिगत उपकरण बन सकता है। इसके अलावा, यूरो का मूल्यह्रास अमरीका और चीन जैसे बड़े व्यापारिक देशों की स्पर्धात्मकता को घटायेगा जिससे वे कुछ संरक्षणवादी उपाय करने को भी विवश हो सकते हैं।

7.125 इस संदर्भ में निकास रणनीतियों के समय के महत्त्व पर जोर दिया गया है। हेन एंड मेक्डोनाल्ड (2010) के अनुसार "जब राजकोषीय, मौद्रिक और वित्तीय क्षेत्र के प्रोत्साहन उपायों को हटा लिया जाता है तो प्रभावित प्रतिष्ठान और उद्योग व्यापार संरक्षणवाद की मांग करना आरंभ कर सकते हैं। उच्चतर पण्य मूल्य यह जोखिम लाते हैं कि कुछ देश अपने पण्य निर्यातों पर कर या प्रतिबंध लगायेंगे - ऐसा जोखिम जो 2007-08 के खाद्यान्न मूल्य संकट के दौरान प्रदर्शित हुआ था। और अंत में, कुछ उभरते बाजारों में पूंजी आगमनों की लहर से मुद्रा-मूल्य में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। नयी विनिमय दर की उपयुक्तता जो भी हो, इससे निर्यातकों की स्पर्धात्मक स्थिति और निर्यात - स्पर्धात्मक घरेलू क्षेत्र पर जकड़बंदी बन सकती है और वह आयात संरक्षण और निर्यात सहयोग के लिए दबाव पैदा कर सकता है।" ऐसा माना गया है कि ऐसे संरक्षणवादी उपाय वैश्विक आर्थिक पुन:बहाली प्रक्रिया को कमजोर कर सकते हैं। अत: यह नीति निर्माताओं के लिए एक चुनौती है कि वे आने वाले समय में जब सर्वाधिक उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में बेरोजगारी के बहुत अधिक रहने की संभावना है, वे जहाँ तक हो सके, प्रत्यक्ष या परोक्ष संरक्षणवादी उपायों से बचें।

XI. निष्कर्षात्मक टिप्पणियाँ

7.126 उपरोक्त चर्चा रेखांकित करती है कि वैश्विक वित्तीय खलबली और उसके परिणामस्वरूप विशाल मंदी के मूल कारण काफी व्यापक और जटिल थे। हाल के संकट के आरंभ होने के बाद से उसके विभिन्न कारणों का विश्लेषण करने वाला साहित्य प्रचुर मात्रा में है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि संकट के कारण हमें सबक देते हैं और उनका कार्यान्वयन राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय स्तरों पर नीतिनिर्माताओं के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य हो सकता है।

7.127 संकट के लिए जिम्मेदार कारणों के दायरे में अतिशय लीवरेजों और जोखिम उठाने की इच्छा, जिसे लंबे समय तक दी गयी असाधारण निम्न ब्याज दरों से और भी बढ़ावा मिला तथा विशाल वैश्विक असंतुलन; जोखिम प्रबंध की दोषपूर्ण पद्धतियाँ, अनियंत्रित वित्तीय नवाचार, निवेशकों के लिए समुचित सावधानी की कमी तथा विनियामक और पर्यवेक्षण व्यवस्थाओं में मौजूद कमजोरियों का समावेश है। कैरूआना (2009) के अनुसार यदि इतिहास मार्गदर्शक है तो हम पाते हैं कि भीड़ का भेड़िया-धँसान बहुत सामान्य है और जब चीजें अच्छी घट रही होती हैं तो लोगों में अत्याधिक सीमित दृष्टि और अति उल्लास की प्रवृति होती है। वे चेतावनी देते हैं कि आकुलता का दौर समाप्त होते ही फिर से एक उछाल का दौर आयेगा, जिसकी विशेषता जोखिम उठाने की अभिलाषा, त्वरित आशावाद और अल्पकालीन लाभों पर अतिशय एकाग्रता में होगी। इसलिए यह प्रासंगिक है कि आवश्यक सुधारात्मक कार्रवाई पर विचार किया जाए ताकि भविष्य में ऐसे संकटों की पुनरावृति को रोका जाए और जब वे आते हैं तो उनके प्रभावों को न्यूनतम किया जाये।

7.128 पूर्ववर्ती चर्चा उन मूल मुद्दों पर केंद्रित है जिन पर नीतिनिर्माताओं को विचार-विमर्श करना है। हाल के संकट से उभरे कुछ मुद्दों पर हो सकता है कि पूर्ण सहमति न बन पाये, लेकिन कुछ पहलू इतने स्पष्ट है कि उन पर कार्रवाई करनी होगी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, जो सबक सीखे जाने हैं वे कारणों में अनतर्निहित हैं। लेकिन बहुत सारा कार्य इन सबकों को उन विशिष्ट कार्रवाइयों में ढालने में है जो ऐसे संकट की भावी पुनरावृति को टाल सकें और उसे न्यूनतम कर सकें। यह आवश्यक है कि इस संकट से जो सबक अभिनिर्धारित किये गये हैं वे वास्तव में सीखे जायें और उनके अनुरूप सार्वजनिक नीतियाँ और बजार व्यवहार अपनाये जाएं। वैश्विक वित्तीय संकट से सबक सीखना और उन्हें अपनाना वास्तव में न केवल उन्नत अर्थव्यवस्थाओं के नीति निर्माताओं के लिए एक चुनौती होगा, बल्कि उन उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के लिए भी जिनकी नीतियाँ वैयक्तिक रूप से और सामूहिक रूप से आने वाले समय में वैश्विक अर्थव्यवस्था और वित्तीय प्रणाली के विकास को अधिकाधिक प्रभावित करेंगी।

7.129 पिछला अनुभव यह बताता है कि संकट जरूरी सुधारों के लिए गुंजाइश और सकारात्मक रूख पैदा करता है। यद्यपि संकट कष्टप्रद होते हैं क्योंकि उनके परिणामस्वरूप उत्पादन की हानि होती है और उससे कल्याणकारी गतिविधियाँ प्रभावित होती हैं पर उसी समय वे भविष्य में ऐसे दबावों के लिए प्रतिरोध के उपयों को पुनर्गठित करने और उन्हें सुदृढ़ करने का अवसर भी प्रदान करते हैं। अत: यह अनिवार्य है कि उन क्षेत्रों को निर्धारित किया जाए जिनमें नीतिगत ढाँचे को विनियामकों के दृष्टिकोण से पुन: अभिकल्पित करने की आवश्यकता है और समस्या के उन क्षेत्रों की पुनरीक्षा की जाए, जिन्हें बैंकिंग और वित्त के प्रतिभागियों द्वारा सर्वोत्तम तरीके से सुलझाया जा सकता है। समस्या की अतिरेकपूर्ण प्रकृति को देखते हुए उसके लिए अतिरेकपूर्ण कार्रवाई की आवश्यकता पड़ सकती है। तथापि, सुधारों और नये विनियमों पर तर्कपूर्ण ढंग से और सावधानीपूर्वक विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है। सर्तकता इस बात की होनी चाहिए कि अतिरेकपूर्ण नियंत्रण से कुशलता को क्षति पहुँचने जैसी भारी

कीमत न चुकानी पड़े और दूरगामी व व्यापक नियंत्रणों से बाजार ढाँचे को बचाया जाए। तथापि, इन मुद्दों पर विनियामकों के दृष्टिकोण से भारत में और अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर सावधानीपूर्वक चर्चा करने की आवश्यकता है।

7.130 यह अभी भी बहस का विषय है कि आवास की कीमतों में तीव्र उछाल से निपटने का सर्वश्रेष्ठ उपाय विनियामक नीति है या मौद्रिक नीति। तथापि, नये वैश्विक नीतिगत वातावरण के संदर्भ में मोटे तौर पर यह सबक मिला है कि नीतिनिर्माताओं को एकीकृत दृष्टिकोण पर ध्यान देना चाहिए जिसका लक्ष्य सुदृढ़ीकरण और बेहतर ढंग से समष्टि-आर्थिक, संरचनागत और नियंत्रक नीतियों को परस्पर जोड़ते हुए संभाव्य वृद्धि को बढ़ाना हो और अन्तरराष्ट्रीय सहायोग में वृद्धि करते हुए पोषित न किये जा सकने वाले असंतुलनों को रोकना हो। अस्थिर वित्तीय बाजारों के कारण केंद्रीय बैंकों और सरकारों को बहुत सारे ऐसे उपाय करने पड़े थे जो अंतिम उधारदाता (एलओएलआर) के रूप में उनकी परम्परागत भूमिका से बाहर थे। केंद्रीय बैंकों का वित्तीय निकायों को बचाने के लिए सामने आना और अंतिम उधारदाता (एलओएलआर) की अपनी पुरानी अवधारणा से बाहर निकलना वित्तीय बाजारों की बिगड़ती हुई स्थितियों के कारण आवश्यक हो गया था। यद्यपि, केंद्रीय बैंकों की ओर से ऐसी असाधारण सहायता निःस्संदेह संकट के प्रबंधन में बहुत उपयोगी रही, पर अत्याधिक जोखिम उठाने के लिए बैंकों और बाजार प्रतिभागियों के लिए प्रोत्साहन बढ़ाने से एक नैतिक संकट की समस्या भी उभरी है। अंतिम उधारदाता (एलओएलआर) की अवधारणा को विस्तृत किये जाने से बाजार प्रतिभागियों को ऐसा लग सकता है कि अगली बार जब वे अधिक लाभ अर्जन के लिए और भी अधिक जोखिम भरे परिचालन करेंगे तब केंद्रीय बैंक उन्हें चलनिधि में निधि प्रदान करने और उनके प्रतिपक्षों की सहायता करने के लिए तैयार खड़े रहेंगे। इससे केंद्रीय बैंकों के सामने विकास को समर्थन देने और नये, तेजी से विकसित होते वित्तीय बाजारों के प्रति एक संतुलित रवैया सुनिश्चत करने का चुनौतीभरा कार्य उपस्थित हो गया है।

7.131 हाल के संकट ने जिन अल्पावधि और मध्यावधि के मुद्दों को उठाया है, उसके अलावा उसने वित्तीय व्यवस्था के व्यष्टि और समष्टि दोनों प्रभाव क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण संरचनागत कमजोरियों को भी उजागर किया है और वैश्विक अर्थव्यवस्था के विकास के साथ इन्हें मध्यावधि में हल करना होगा। हाल के घटनाक्रमों ने स्पष्ट रूप से यह दर्शाया है कि वैश्वीकरण कैसे वित्तीय स्थिरता को प्रभावित करता है, अर्थात यूएस सब-प्राइम संकट से यूरोपीय संघ बाजार भी तेजी से प्रभावित हुआ और यह प्रतिभूतिकरण के माध्यम से अन्तरराष्ट्रीय पूंजी बाजारों तक भी फैल गया। इस बात को अनुभव करते हुए कि वित्तीय आघात कितनी तेजी से वैश्विक वित्तीय बाजार में संचरित हो जाते हैं, संकट को रोकने और उसके प्रबंधन के लिए बेहतर समन्वयन की अब और अधिक आवश्यकता है। अनेक घटनाक्रमों ने इसमें अपनी भूमिका अदा की थी, जिनमें जटिल बंधक समर्थित प्रतिभूतियाँ और नितान्त अपारदर्शी संरचनावाले व्युत्पन्न, भारी उत्तोलन और अपर्याप्त जोखिम प्रबंध शामिल हैं। इस संकट से वैश्विक वित्तीय व्यवस्था में समष्टि-चलनिधि जोखिम का महत्त्व खुलकर सामने आ गया है और इसकी वजह से इसका निरन्तरता के आधार पर नियंत्रित करने और पर्यवेक्षण करने की आवश्यकता रेखांकित हुई है। अतः निजी क्षेत्र और वित्तीय विनियामक, दोनों को ही जोखिम निगरानी और नियंत्रण की अपनी क्षमता को सुधारना होगा। जैसा कि स्क्वाम लेक रिपोर्ट (जून 2010) में कहा गया है, सूचना संरचना का निर्माण और संकट के पनपने को सरकार द्वारा देख पाने की स्थिति महत्त्वपूर्ण है।

7.132 केंद्रीय बैंकों को समष्टि-आर्थिक निर्धारण पद्धतियों संबंधी अपनी पर्याप्तता और नीतिगत प्रत्युत्तर के संबंध में अपनी भूमिका की समीक्षा करने की आवश्यकता है। नियंत्रण और पर्यवेक्षण के संबंध में एक व्यवस्था-वार दृष्टिकोण की आवश्यकता है। वास्तव में, अनेक लोगों का यह तर्क है कि इस बात को जाँचने की जरूरत है कि क्या प्रणालीगत रूप से महत्त्वपूर्ण वित्तीय संस्थाओं को केंद्रीय बैंक के नियंत्रण के अधीन लाया जाये। इसके अलावा, न केवल वैश्विक स्तर पर अन्तरराष्ट्रीय मानक स्थापना करने वाले निकायों के बीच अधिक समन्वयन की आवश्यकता है, बल्कि राष्ट्रीय स्तर पर भी विनियामकों और पर्यवेक्षकों के बीच समन्वयन आवश्यक है। उदाहरण के लिए, सीमाओं के पार लेखा सिद्धान्तों के एक सामान्य आधार की आवश्यकता है। वैश्विक बाजारों में अब यह वांछनीय नहीं रहा कि ऐसी वैश्विक संस्थाएं हों जो अपने देशों में लेखा और प्रकटीकरण के भिन्न मानक अपनाती हों। जैसा कि पिछले खंडों में चर्चा हुई है, वित्तीय नवाचारों ने वित्तीय बाजारों की अपारदर्शिता को बढ़ाया है। अतः विनियामकों और पर्यवेक्षकों को वित्तीय व्यवस्था के विभिन्न घटकों में पारदर्शिता को बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। इसके अतिरिक्त चाहे उन्नत देश हों या उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं - दोनों जगहों पर राजकोषीय स्थिरता को सुनिश्चित करने के लिए मजबूत संस्थागत ढाँचों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।

7.133 संकट को निर्मित करने में आसान मौद्रिक नीति का ठीक ठीक क्या योगदान था, इस पर यद्यपि मतैक्य नहीं है, पर इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि संकट को सुलझाने में मौद्रिक नीति की एक बड़ी भूमिका है। अब इस बात को अधिकाधिक अनुभव किया जा रहा है कि मौद्रिक नीति और आस्ति मूल्यों के बीच के संबंध पर पुन: विचार करने की आवश्यकता है। केंद्रीय बैंकों को प्रणालीगत जोखिमों के लिए नये उपायों को विकसित करना होगा ताकि वास्तविक और अटकलबाजी पर आधारित उछाल के बीच के फर्क को अधिक स्पष्ट किया जा सके। मौद्रिक नीति प्राधिकारियों के लिए अन्य महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ निम्नलिखित होंगी (i) वित्तीय स्थिरता को सुनिश्चित करना, यद्यपि मूल्य स्थिरता को मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य बना रहना चाहिए; (ii) केंद्रीय बैंक के तुलन पत्र का आकार; (iii) राजकोषीय नीति के साथ समन्वयन; (iv) विभिन्न हितधारकों के साथ प्रभावी सम्प्रेषण; और (v) वित्तीय क्षेत्र और वास्तविक अर्थव्यवस्था को स्थिरता देना।

7.134 आगे की ओर देखने पर, विश्वभर में अभूतपूर्व मौद्रिक समर्थनकारी उपायों से सतर्कतापूर्वक निकास अब एक सबसे महत्त्वपूर्ण चुनौती है। प्रोत्साहन उपायों को समेटने की विश्वसनीय योजनाएं और दीर्घावधि वाली निर्वहन योग्य राजकोषीय स्थितियों की बहाली को विस्तार देने की आवश्यकता है। इस संदर्भ में, यह महत्त्वपूर्ण होगा कि वैश्विक अर्थव्यवस्था कितनी तजी से सामान्य स्थिति की ओर लौटती है। अन्यथा, निरन्तर मंदी का जोखिम राज्य देशों की भेद्यता को और गंभीर बनायेगा, विशेषकर ऐसे देशों की, जिनके सकल घरेलू उत्पादन की तुलना में कर्ज के स्तर बहुत ऊँचे हैं और जिनकी वित्तीय क्षेत्र के लिए भारी आकस्मिक देयताएं हैं। वास्तव में, राष्ट्र-सत्ताओं के कर्ज की समस्याएं यूनान जैसे देशों के मामले में स्पष्ट भी होने लगी हैं, जहाँ ऋण-सकल घरेलू उत्पादन का अनुपात 115 प्रतिशत हो गया है, जो कि निरन्तर बढ़ते हुए राजकोषीय घाटे और गिरते हुए सकल घरेलू उत्पादन की वजह से हैं। इस बात की चिंताएं हैं कि ऐसा संकट यूरोपीय संघ की अन्य भेद्य अर्थव्यवस्थाओं तक भी फैल सकता है। ऐसे देशों को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि वे कर्ज को पोषित करने की दिशा में विश्वसनीय वचनबद्धताएं करते हैं। इसलिए अन्य भेद्य देशों को यह सुनिश्चित करना है कि उनके द्वारा की गयी नीतिगत पहल से भारी ऋण शोधन जोखिम पैदा नहीं हो रहे हैं। नीतिनिर्माताओं के लिए यह चुनौती भरा कार्य होगा कि वे जब बाजार स्थितियाँ अनुमति दें और आर्थिक परिदृश्य एक ठोस रूप से सामान्य स्थिति की ओर लौटता नज़र आये तो वे संकट में हस्तक्षेप के लिए दिये गये प्रोत्साहनों को समेटने की एक विश्वसनीय और सुसंगत रणनीति प्रारंभिक अवस्था में ही विकसित करें। इस संदर्भ में दो मुख्य चुनौतियाँ हैं। पहली तो यह कि यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि निरन्तर दी जा रही अल्पावधि की सहायता प्रोत्साहनों को विरुपित न करे और मध्यावधि में हानिकारक प्रभाव डालते हुए सार्वजनिक तुलन पत्रों के लिए संकट पैदा न करने लगे। दूसरी यह कि राजकोषीय प्राधिकारियों को सुनिश्चित करना है कि उनके द्वारा वापसी के कदमों का समय और क्रमबद्धता वृद्धि की संभावनाओं को अवरुद्ध न करे। इसके लिए एक सुसंगत क्रमबद्धता और मौद्रिक, विनियामक व राजकोषीय प्राधिकारियों से स्पष्ट सम्प्रेषण आवश्यक है।

7.135 ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएं पहले की संकटों से मिले सबक से अपने बजटों को सुदृढ़ बनाने, सार्वजनिक कर्ज को घटाने, चालू खाते के घाटे को सीमित करने और विदेशी मुद्रा ऋण जोखिमों का अधिक सावधानी से प्रबंध करने के लिए प्रेरित हुईं, जिसके परिणामस्वरूप उनकी भेद्यता कम हुई और नीतिगत गुंजाइश बढ़ी। यह हाल के संकट के दौरान अत्यंत लाभदायक साबित हुआ है। इसके बावजूद हाल के संकट से उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं के लिए जो मूल संदेश आया है वह यह है कि वे वित्तीय क्षेत्र में सुदृढ़ नीतिगत ढाँचों को जारी रखें, वैश्विक मांग को संतुलित करने के लिए पर्याप्त निवेश क्षमताएं उत्पन्न करें, भविष्य में विवेकाधीन नीति के लिए बेहतर गुंजाइश हेतु राजकोषीय सुदृढ़ता की दिशा में निरन्तर प्रयास करें और पूंजी खाते के उदारीकरण के संबंध में अपने दृष्टिकोण की समीक्षा करें। हाल के समय में वैश्विक घटनाओं से इस तर्क को बल मिला है कि उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाएं उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में उत्पन्न हुए संकट के परिणामों से स्वयं को अछूता नहीं रख सकतीं। तथापि, इस प्रभाव को वित्तीय और राजकोषीय क्षेत्रों में सुदृढ़ नीतिगत कदमों के द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। अपने विकास की गति को बेहतर ढंग से टिकाऊ बनाने के लिए उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं को अन्य बातों के साथ-साथ, अपनी अर्थव्यवस्थाओं की अवशोषण-क्षमताओं को भी बढ़ाना होगा, यह न केवल उनकी वृद्धि संभाव्यताओं को बढ़ाने के लिए आवश्यक है, बल्कि वैश्विक मांग में संतुलन लाने और पूंजी आगमनों के बेहतर अवशोषण के लिए भी जरूरी है। इसके अलावा, संकट ने उभरती बाजार अर्थव्यवस्थाओं के पूंजी खाता प्रबंधन के मामले की ओर भी ध्यान खींचा है।

7.136 संकट से मिले सबकों की यह सूची सर्वांगीण और पूर्णतया अंतिम नहीं हो सकती। पर इसके बावजूद इससे वे बहुत सारे मुद्दे

उभरे हैं जिन पर नीतिनिर्माताओं को राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर बहस करने की आवश्यकता है। हाल का संकट जबकि बाजारों के बीच राष्ट्रीय सीमाओं के पार के अन्त: संबंधों को देखते हुए आर्थिक नियंत्रण में आधारभूत परिवर्तनों को प्रेरित कर सकता है, राष्ट्रीय समाधान अब पर्याप्त नहीं रहेंगे। समष्टि-आर्थिक नीतियों, व्यापार और वित्तीय नियंत्रणों पर अन्तरराष्ट्रीय सहयोग को आवश्यक बनाते हुए अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि हाल के संकट ने देशों को एक अवसर दिया है कि वे गहन वैश्विक समस्याओं के हल के लिए आवश्यक मतैक्य बनाने की दिशा में पहल करें। हाल का संकट एक उचित समय दे रहा है कि एक राजनीतिक इच्छा शक्ति एकत्रित कर राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर लंबे समय से अपेक्षित संरचनागत सुधारों को अपनाया जाये। नीतिनिर्माताओं को संकट से मिले सबकों की प्राथमिकता बनानी चाहिए और उन पर ऐसे समन्वित रूप से कार्रवाई करनी चाहिए कि भविष्य में ऐसे संकट की संभावना को न्यूनतम रखा जा सके।